अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

फरवरी २०१८

उषा-नगरी

अग्निशिखा फ़रवरी २०१८ वर्ष ४८, अंक ७, पूर्णांक ५७०

विषय-सूची

(उषा-नगरी)

सन्देश/सम्पादकीय		३
परम का स्वप्न		५
ओरोवील का जन्म		१५
ओरोवील का उद्देश्य		१९
भावी नगरी का निर्माण		२४
ओरोवील का प्रतीक		३३
मातृमन्दिर		४२
चम्पकलाल के अन्तर्दर्शन		५०
'पुरोधा' : दैनन्दिनी		५२
'नयी कोंपलें' : ज़िन्दगी का मोड़	शक्ति शर्मा	५५
भाव कहीं और जाता ही नहीं...	वन्दना	५६

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पाँच वर्ष—८६०रु.

अधिष्ठाता : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

सन्देश

ओरोवील के लिए काम करना अधिक सामञ्जस्यपूर्ण 'भविष्य' के आगमन को जल्दी लाना है।

अगर उचित मनोभाव हो तो हम अपनी छोटी-से-छोटी क्रिया में भी भगवान् की सेवा कर सकते हैं। —श्रीमाँ

सम्पादकीय : प्रारम्भ से ही मानवता ऐसे सपने सँजोये हुए है जिसमें वह सबके साथ सचमुच एकजुट रह सके, उसके अन्दर हमेशा से प्रसन्न, शान्तिमय और सामञ्जस्यपूर्ण सह-अस्तित्व की लौ धधकती रही है। मनुष्यों के धार्मिक तथा लौकिक विचारों ने इस दिशा में विभिन्न क़दम बढ़ाये ज़रूर हैं, लेकिन आज तक हम केवल अस्थायी निकटता ही पा सके हैं, सच्ची एकता नहीं। शायद इसका सच्चा आधार ही नहीं था। इस बार, अतिमानसिक चेतना के प्रादुर्भाव के बाद, हम इस प्रयास को चरितार्थ होते हुए देख रहे हैं, जिसका सूत्रपात स्वयं भगवती माँ ने १९६८ में 'ओरोवील' की नींव रख कर किया था। ओरोवील के मूल में निहित है, अधिक उज्ज्वल, अधिक सामञ्जस्यपूर्ण और अधिक सुन्दर जीवन की अभीप्सा। यह है वह भागवत योजना जिसका सूत्रपात, दिग्दर्शन तथा समर्थन श्रीमाँ द्वारा हुआ है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मानवता के लिए यह स्वप्न-सी एक परियोजना है, लेकिन स्वयं प्रभु का तो यह वह स्वप्न है जिसे निस्सन्देह साकार होना ही है।

'ओरोवील' की पचासवीं वर्ष-जयन्ती पर हमारा यह अंक दिव्य माँ की वैश्व नगरी—ओरोवील—के प्रादुर्भाव को समर्पित है।

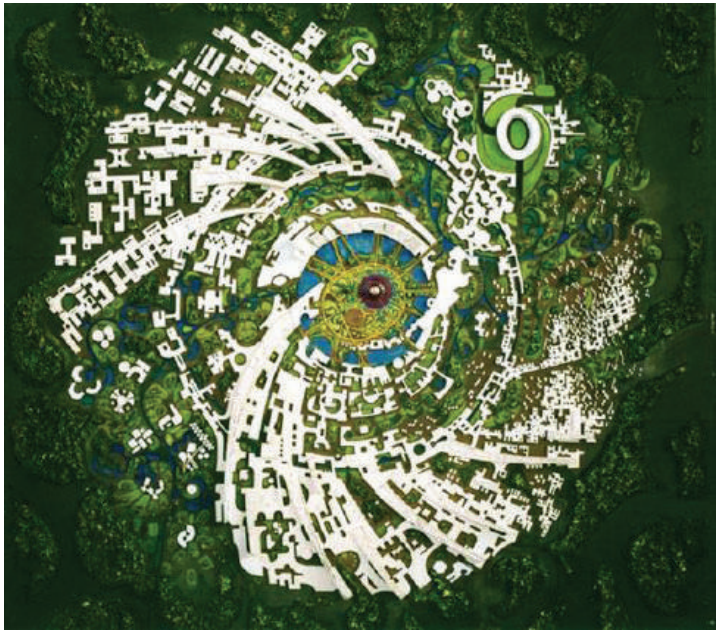

ओरोवील एक वैश्व नगरी बनना चाहता है...

ओरोवील एक वैश्व नगरी बनना चाहता है जहाँ सभी देशों के नर-नारी शान्ति और बढ़ते हुए सामञ्जस्य में, सभी मतों, समस्त राजनीति और सब राष्ट्रीयताओं से ऊपर रह सकें।

ओरोवील का उद्देश्य है, मानव एकता को चरितार्थ करना।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २०२

परम का स्वप्न

१. ओरोवील-निर्माण के लिए पहल किसने की?

परम प्रभु ने।

२. ओरोवील की आर्थिक व्यवस्था में कौन भाग लेता है?

परम प्रभु।

३. अगर कोई ओरोवील में रहना चाहे, तो उसके लिए इसका क्या अर्थ है?

'परम पूर्णता' पाने के लिए कोशिश करना।

४. क्या ओरोवील में रहने के लिए व्यक्ति को योग का विद्यार्थी होना चाहिये?

सारा जीवन ही योग है। अतः तुम परम योग किये बिना जी ही नहीं सकते।

५. ओरोवील में आश्रम की क्या भूमिका होगी?

जो कुछ परम प्रभु चाहेंगे।

६. क्या ओरोवील में पड़ाव डालने की व्यवस्था होगी?

सभी चीज़ें जैसी होनी चाहियें होंगी, जब होनी चाहियें होंगी।

७. क्या ओरोवील में पारिवारिक जीवन होगा?

अगर व्यक्ति उससे ऊपर न उठ गया हो तो।

८. क्या व्यक्ति ओरोवील में अपना धर्म बनाये रख सकता है?

अगर वह उससे ऊपर न उठ गया हो तो।

९. क्या ओरोवील में व्यक्ति नास्तिक भी हो सकता है?

अगर वह उससे ऊपर न उठ गया हो तो।

१०. क्या ओरोवील में सामाजिक जीवन होगा?

अगर व्यक्ति उससे ऊपर न उठ गया हो तो।

११. क्या ओरोवील में सामुदायिक क्रिया-कलाप अनिवार्य होंगे?

कुछ भी अनिवार्य न होगा।

१२. क्या ओरोवील में धन का उपयोग होगा?

नहीं, ओरोवील केवल बाह्य जगत् के साथ धन का सम्बन्ध रखेगा।

१३. ओरोवील में काम कैसे बाँटा जायेगा और उसकी व्यवस्था कैसे होगी?

"धन ही सर्वेसर्वा नहीं होगा; भौतिक सम्पत्ति और सामाजिक स्तर की अपेक्षा व्यक्ति के मूल्य का कहीं अधिक महत्त्व होगा। वहाँ कार्य निजी आजीविका का साधन न होकर अपने-आपको अभिव्यक्त करने, अपनी क्षमताओं और सम्भावनाओं को विकसित करने, साथ ही समूचे संगठन की सेवा करने के लिए होगा, और संगठन हर व्यक्ति के भरण-पोषण और कार्यक्षेत्र की भी व्यवस्था करेगा।"

१४. ओरोवील-निवासियों और बाहरी जगत् वालों में क्या सम्बन्ध होगा?

हर व्यक्ति को पूरी आज़ादी है। ओरोवीलवासियों के बाहरी सम्बन्ध हर एक की अपनी अभीप्सा और उसके ओरोवील के काम पर निर्भर होंगे।

१५. ओरोवील की भूमि और भवनों का स्वामी कौन होगा?

परम प्रभु।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २०२-०४

आदर्श नगरी

काफ़ी लम्बे समय तक, यह बात श्रीअरविन्द के जीवनकाल की है, मेरे पास एक "आदर्श नगरी" की योजना रही जिसके केन्द्र में श्रीअरविन्द निवास करते। बाद में, मुझे कोई दिलचस्पी नहीं रही। फिर ओरोवील का विचार—ओरोवील नाम मैंने दिया था—एक बार फिर से उठाया गया, लेकिन दूसरे छोर से : निर्माण के लिए स्थान ढूँढ़ने के बजाय, स्वयं स्थान —'लेक' (झील) के पास—ने निर्माण को जन्म दिया, और अब तक मैं उसमें बहुत ही कम रुचि ले रही थी, क्योंकि मुझे स्पष्ट रूप में कुछ भी न मिला था। फिर हमारी छोटी 'क' ने मन में यह बात ठान ली कि वहाँ, 'लेक' के किनारे, एक घर उसके अपने लिए होगा, और उसके साथ ही एक घर मेरे लिए होगा जिसे वह मुझे समर्पित कर देगी। और उसने अपने सभी स्वप्न मुझे लिखे : दो-एक वाक्यों ने अचानक पुरानी, बहुत पुरानी किसी ऐसी चीज़ की, एक सृष्टि की, स्मृति को कुरेद दिया जिसने—जब मैं बहुत छोटी थी तब—अभिव्यक्त होने की चेष्टा की थी और जिसने फिर से इस शताब्दी के एकदम शुरू में अपने-आपको अभिव्यक्त करने की चेष्टा शुरू की थी, जब मैं तेओं के साथ थी। फिर मैं वह सब भूल गयी। इस पत्र के साथ-साथ वह चीज़ वापस लौट आयी; एकदम से, मेरे पास ओरोवील की योजना बन गयी।...

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २७२

एक प्रारम्भिक संरचना

उस पुरानी संरचना के अनुसार जो मैंने बनायी थी, वहाँ एक पहाड़ी और एक नदी होनी चाहिये। पहाड़ी तो होनी ही चाहिये, क्योंकि श्रीअरविन्द का मकान पहाड़ी की चोटी पर था। लेकिन श्रीअरविन्द वहाँ केन्द्र में थे। यह मेरे प्रतीक की योजना के अनुसार व्यवस्थित किया गया था, यानी, बीच का बिन्दु, जहाँ श्रीअरविन्द होंगे, श्रीअरविन्द के जीवन से सम्बन्धित सब कुछ होगा, चार बड़ी पंखुड़ियाँ होंगी—वे ऐसी नहीं थीं जैसी इस चित्र में बनी हैं, कुछ और ही तरह की थीं—और उसके चारों तरफ़ बारह थीं, वही शहर था, और उसके चारों तरफ़ शिष्यों के घर थे; तुम मेरे प्रतीक को जानते हो : रेखाओं के स्थान पर फ़ीते होंगे; हाँ तो, अन्तिम गोलाकार

फ़ीते पर शिष्यों के घर होंगे, हर एक का अपना घर और बग़ीचा होगा... हर एक के लिए एक छोटा-सा घर और बग़ीचा। यातायात का कोई साधन था, मुझे ठीक पता नहीं कि व्यक्तिगत वाहन थे या सामुदायिक—जैसे पहाड़ों पर खुली ट्रामकारें होती हैं, वैसी—हर दिशा में जाकर शिष्यों को वापस शहर के केन्द्र में ले आती थीं। और इस सबके चारों तरफ़ एक दीवार थी, प्रवेशद्वार और द्वारपाल थे, और बिना अनुमति के व्यक्ति अन्दर प्रवेश नहीं पा सकता था। धन नहीं था—दीवार के घेरे के अन्दर धन नहीं था; विभिन्न प्रवेश-स्थलों पर बैंक या इस तरह के काउंटर थे जहाँ व्यक्ति अपने पैसे जमा करा दे और उसके बदले में उसे टिकट मिलते, जिनसे वह वहाँ रहना, खाना, इत्यादि, सब कुछ पा लेता। लेकिन पैसे नहीं—टिकट बाहर से आने वालों के लिए होते, जो बिना स्वीकृति के अन्दर नहीं आ सकते थे। बहुत बड़ा संगठन था...। धन नहीं, मैं धन एकदम नहीं चाहती थी।

अरे! अपने नक़्शे में मैं एक चीज़ भूल गयी। कर्मचारियों के लिए, मैं एक बस्ती बनवाना चाहती थी, लेकिन यह बस्ती औद्योगिक विभाग का एक हिस्सा होती, शायद औद्योगिक विभाग के किनारे-किनारे का फैलाव।

मेरी पहली रचना में, दीवार के बाहर, एक तरफ़ औद्योगिक शहर था, और दूसरी तरफ़ शहर की ज़रूरतें पूरी करने के लिए खेत, खलिहान, फ़ार्म, इत्यादि थे। लेकिन वह (रचना) देश का प्रतिनिधित्व करती थी—किसी बड़े देश का नहीं, बस, एक देश का। लेकिन अब चीज़ काफ़ी छोटी हो गयी है। अब वह मेरा प्रतीक भी नहीं रहा; केवल चार क्षेत्र हैं और कोई दीवार नहीं। और धन भी होगा। समझ रहे हो न, पहली रचना सचमुच एक आदर्श प्रयास थी...। लेकिन शुरू करने की कोशिश करने से पहले मैंने कई साल इस पर विचार किया था। उस समय मैंने चौबीस साल का अन्दाज़ लगाया था। लेकिन अब यह काफ़ी अधिक मर्यादित है, यह एक अस्थायी प्रयास है, और इसे अधिक जल्दी चरितार्थ किया जा सकता है।...

मुझे विश्वास है कि वह अपनी मौलिक पवित्रता बनाये रखेगी, और हम कुछ करने की कोशिश कर सकते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २७८-८०

इसका अर्थ यह है कि शिष्य यहीं (आश्रम में) रहेंगे?

ओह! आश्रम यहीं रहेगा—आश्रम यहीं रहेगा, मैं यहीं रहूँगी, यह जानी हुई बात है। ओरोवील एक...

एक उपग्रह है।

हाँ, यह बाहरी जगत् के साथ सम्पर्क होगा। मेरे नक़्शे का केन्द्र प्रतीकात्मक केन्द्र है।

लेकिन 'क' इसी की आशा करती है : वह ऐसा घर चाहती है जिसमें वह एकदम अकेली हो और उसी के पास एक ऐसा घर हो जिसमें मैं बिलकुल अकेली रहूँ। यह दूसरी बात एक स्वप्न है, क्योंकि मैं और एकदम अकेली...। जो हो रहा है बस, उसे देखने-भर की ज़रूरत है! सच है, है न? तो यह सारी चीज़ "एकदम अकेले" के साथ मेल नहीं खाती। एकान्त अपने अन्दर पाना चाहिये, यही एकमात्र उपाय है। लेकिन जहाँ तक रहने का सवाल है, निश्चय ही मैं वहाँ जाकर नहीं रहूँगी, क्योंकि समाधि यहाँ है, लेकिन मैं वहाँ घूमने जा सकती हूँ। उदाहरण के लिए, मैं वहाँ किसी उद्घाटन-समारोह या अन्य अनुष्ठानों के लिए जा सकती हूँ। देखेंगे। अभी तो बहुत साल लगेंगे।

संक्षेप में, ओरोवील बाहर वालों के लिए अधिक है?

ओह हाँ! यह एक शहर है! अतः, इसका बाहरी जगत् के साथ पूरा सम्बन्ध रहेगा। यह पृथ्वी पर एक अधिक आदर्श जीवन को चरितार्थ करने का प्रयास है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २७७-७८

आगामी कल के भोजन की खोज

कुछ ऐसी चीज़ें हैं जो सचमुच मज़ेदार हैं; सबसे पहले, उदाहरण के लिए, मैं चाहूँगी कि हर देश का अपना मण्डप हो, और हर मण्डप में उस देश का अपना रसोईघर हो—यानी, जापानी लोग चाहें तो अपने ढंग का खाना खा सकेंगे, इत्यादि, लेकिन स्वयं नगर में शाकाहारी-मांसाहारी, दोनों तरह का भोजन मिल सकेगा, और साथ ही आगामी कल के भोजन के बारे में खोज करने की कोशिश भी की जायेगी।

पाचन की सारी क्रिया जो तुम्हें इतना भारी बना देती है—इसमें व्यक्ति का बहुत समय और शक्ति खर्च होते हैं—यह सब काम **पहले ही** हो जाना चाहिये, तुम्हें ऐसी कोई चीज़ मिलनी चाहिये जो एकदम आत्मसात् हो जाये, ऐसी चीज़ें आजकल बनायी जाती हैं; उदाहरण के लिए, विटामिन और प्रोटीन की गोलियाँ, जिन्हें तुरन्त आत्मसात् किया जा सकता है, ऐसे पौष्टिक तत्त्व जो किसी-न-किसी चीज़ में पाये जाते हैं, जिनकी मात्रा अधिक नहीं होती—ज़रा-सी मात्रा आत्मसात् करने के लिए बहुत अधिक खाने की ज़रूरत पड़ती है। इसलिए अब चूँकि रसायन की दृष्टि से मनुष्य काफ़ी प्रवीण हो चुका है, वह चीज़ों को ज़्यादा आसान बना सकता है।

लोगों को यह केवल इसलिए पसन्द नहीं है क्योंकि उन्हें खाने में अपार आनन्द मिलता है; लेकिन जब कोई खाने में बहुत अधिक रस नहीं लेता, फिर भी उस पर समय बरबाद किये बिना पोषण की आवश्यकता तो होती ही है। बहुत सारा समय बरबाद होता है—खाने में, हज़म करने में, और बाक़ी सब में। इसलिए यहाँ, मैं चाहूँगी कि एक रसोईघर इस तरह के परीक्षणों के लिए हो, एक प्रकार की पकाने की प्रयोगशाला हो। लोग अपने स्वाद और रुजहान के अनुसार जहाँ चाहें जा सकें।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २८५-८६

जीवन जीने के नये तरीक़े के लिए अध्ययन तथा शोध

... फिर भोजन के लिए दाम देने की ज़रूरत नहीं, लेकिन उन्हें अपनी सेवाएँ या उत्पादन अर्पित करने चाहियें: उदाहरण के लिए, जिनके पास खेत हों उन्हें अपने खेतों की उपज देनी चाहिये; जिनके पास कारख़ाने हों उन्हें कारख़ाने की बनी चीज़ें देनी चाहियें; या फिर व्यक्ति भोजन के बदले अपना श्रम दे।

यह विधि एक बड़ी हद तक रुपये-पैसे के अन्दरूनी लेन-देन को दूर कर देगी। हर चीज़ के लिए हमें इस तरह की चीज़ें खोजनी चाहियें। मूलभूत रूप से, यह नगरी अध्ययन के लिए होनी चाहिये, अध्ययन और शोध के लिए, जिससे जीवन अधिक सरल बन सके और उच्चतर गुणों के विकास के लिए **अधिक समय** मिल सके।

यह तो केवल छोटा-सा आरम्भ है।...

मैं इस बात पर ज़ोर देना चाहती हूँ कि यह एक परीक्षण होगा, यह परीक्षण करने के लिए है—परीक्षण, शोध, अध्ययन।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २८६

अपनी क्षमता के अनुसार व्यक्ति का योगदान

मैं एक बात कहना चाहती थी: सारे नगर को लें तो रहन-सहन का हिसाब व्यक्ति के हिसाब से नहीं होगा; यानी, हर आदमी को इतना देना पड़ेगा, ऐसा न होगा। साधन, कार्य और उत्पादन की सम्भावना के अनुसार हिसाब लगाया जायेगा; जनतन्त्र का विचार नहीं होगा जो समग्र को बराबर-बराबर के टुकड़ों में काट देता है, यह एक बेहूदी प्रणाली है। इसके बजाय साधनों के अनुपात से हिसाब लगाया जायेगा: जिसके पास ज़्यादा है वह ज़्यादा देगा, जिसके पास कम है वह कम देगा; जो मज़बूत है वह ज़्यादा काम करेगा, जो मज़बूत नहीं है वह कुछ और करेगा। हाँ, यह ऐसी चीज़ है जो ज़्यादा सत्य, ज़्यादा गहरी होगी। इसीलिए, मैं इसे अभी से समझाने की कोशिश नहीं करती, क्योंकि लोग हर तरह की शिकायतें करना शुरू कर देंगे। असल में तो जैसे-जैसे नगरी बढ़ती जाये वैसे-वैसे इस सबको सच्चे भाव में अपने-आप होते जाना चाहिये।

उदाहरण के लिए, इस वाक्य को ले लें:

"यहाँ रहने वाले सब लोग इसके जीवन और विकास में भाग लेंगे।"

यहाँ रहने वाले इस नगर के जीवन और विकास में अपनी क्षमता और अपने साधनों के अनुसार भाग लेंगे, यान्त्रिक रूप में नहीं—हर इकाई के लिए इतना। बात यह है, यह एक जीवित-जाग्रत् और सच्ची चीज़ होनी चाहिये, कोई यान्त्रिक चीज़ नहीं; और हर एक की क्षमता के अनुसार: यानी, जिसके पास भौतिक साधन हों, जैसे कारख़ानेवाले, अपनी उपज के अनुपात में सहायता दें, आदमी गिन कर नहीं।

"सहयोग निष्क्रिय या सक्रिय हो सकता है।"...

क्या आपका मतलब यह है कि जो मनीषी हैं, जो अन्दर से काम करते हैं, उन्हें...

हाँ, यही। जिनके पास उच्चतर ज्ञान है उन्हें हाथों से काम करने की ज़रूरत नहीं, मेरा यही मतलब था।

> *"वैसे वहाँ कर न होंगे, लेकिन हर एक सामुदायिक कल्याण के लिए धन, उपज या काम के द्वारा सहयोग देगा।"*

तो यह स्पष्ट है : वहाँ कर नहीं होंगे, लेकिन हर एक से आशा की जायेगी कि सबके भले के लिए काम, उपज या धन से सहायता करे। जिनके पास धन के सिवाय कुछ नहीं है वे धन देंगे। लेकिन सच बात तो यह है कि "काम" का मतलब आन्तरिक कार्य हो सकता है—लेकिन हम यह बात नहीं कह सकते, क्योंकि लोग इतने ईमानदार नहीं हैं। पूरी तरह अपने अन्दर-ही-अन्दर, गुह्य कार्य हो सकता है; लेकिन व्यक्ति को उसके लिए पूरी तरह सच्चा और ईमानदार होना चाहिये, और उसके लिए क्षमता होनी चाहिये : कोई ढोंग न हो। यह ज़रूरी नहीं है कि काम भौतिक काम ही हो।

> *"उद्योग जैसे क्रियात्मक रूप से सहयोग देने वाले विभाग नगर के विकास के लिए अपनी आमदनी का कुछ भाग देंगे। या अगर वे कुछ ऐसी चीज़ पैदा करते हों (मान लो खाद्य) जो नगरवासियों के लिए उपयोगी हो, तो वे नगर को यह चीज़ देंगे, क्योंकि नगरवासियों को खिलाने के लिए स्वयं नगर ज़िम्मेदार है।"*

हम अभी यही तो कह रहे थे। उद्योग सक्रिय रूप से भाग लेंगे, वे सहयोग देंगे। अगर ये ऐसे उद्योग हैं जो ऐसी चीज़ें बनायें जिनकी हमेशा खपत न हो और इस कारण शहर के लिए संख्या या मात्रा में अधिक हो जायें तो उन्हें बाहर बेचा जायेगा। तब, स्वभावतः, उन्हें धन से सहायता करनी चाहिये। और मैं खाद्य पदार्थ का उदाहरण लेती हूँ; जो लोग खाद्य पदार्थ पैदा करेंगे वे—स्वभावतः, अपनी उपज के अनुपात में—नगर को खाद्य देंगे और नगर सबके भरण-पोषण के लिए ज़िम्मेदार होगा। मतलब यह कि पैसा देकर खाद्य ख़रीदने की ज़रूरत न होगी; बल्कि उसे कमाना होगा।

यह एक प्रकार से साम्यवादी आदर्श से मिलता-जुलता रूप है, लेकिन समतल करने की वृत्ति से नहीं; यहाँ हर एक का स्थान उसकी क्षमता, आन्तरिक स्थिति के अनुसार होगा—बौद्धिक या मनोवैज्ञानिक क्षमता या

स्थिति के अनुसार नहीं।

सच तो यह है कि हर व्यक्ति को भौतिक दृष्टि से अधिकार है—लेकिन यह "अधिकार" नहीं है...। हमारा संगठन कुछ ऐसा होना चाहिये, उसकी व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये कि हर एक की भौतिक आवश्यकताएँ पूरी हो सकें, लेकिन इसकी कसौटी अधिकार या बराबरी नहीं, बल्कि न्यूनतम आवश्यकताएँ होंगी। और यह एक बार स्थापित हो जाये, तो फिर हर एक अपने जीवन की व्यवस्था—आर्थिक साधनों के अनुसार नहीं, बल्कि अपनी आन्तरिक क्षमताओं के अनुसार कर सकने के लिए स्वतन्त्र हो सकेगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २८७-८९

मन के स्थान पर आध्यात्मिक चेतना को बिठाना

"कोई नियम या विधान नहीं बनाये जायेंगे। जैसे-जैसे इस नगरी का मूलभूत सत्य प्रकट होता और रूप लेता जायेगा वैसे-वैसे चीज़ें अपना रूप लेती जायेंगी। हम पूर्वानुमान नहीं लगाते।"

मेरा मतलब यह है कि सामान्यतः—आज तक, और अब अधिकाधिक रूप में—लोग अपने मानसिक विचारों और आदर्शों के अनुसार मानसिक नियम बनाते आये हैं; और फिर वे उनके अनुसार चलते हैं *(श्रीमाँ मुट्ठी बाँध कर दिखाती हैं कि दुनिया मन की कितनी पकड़ में है)*, लेकिन यह बिलकुल मिथ्या, मनमानी और अवास्तविक स्थिति है—इसके परिणामस्वरूप विद्रोह होते हैं या चीज़ें मुरझा कर अदृश्य हो जाती हैं...। होना तो यह चाहिये कि जीवन का अनुभव ही, जहाँ तक सम्भव हो, अधिक-से-अधिक लचीले और विस्तृत नियम बनाये, ऐसे नियम बनाये जो प्रगतिशील हों। कोई चीज़ बँधी हुई न हो।

सरकारों की यह बहुत बड़ी भूल है; वे एक चौखटा बना देती हैं और कहती हैं : "लो, अब यह तैयार है, तुम्हें इसके अन्दर ही रहना होगा।" स्वभावतः इसके परिणामस्वरूप जीवन कुचला जाता है और वे उसे प्रगति करने से रोकती हैं। होना तो यह चाहिये कि धीरे-धीरे यथासम्भव सामान्य नियम बनाते हुए जीवन स्वयं 'ज्योति', 'ज्ञान' और 'शक्ति' की ओर अग्रसर होते हुए अधिकाधिक विकसित हो और ये नियम अत्यधिक नमनीय हों,

ताकि आवश्यकतानुसार बदले जा सकें—उतनी ही तेज़ी से बदले जा सकें जितनी तेज़ी से ज़रूरतें और आदतें बदलती हैं।

(मौन)

सारी समस्या का निचोड़ यह है : बुद्धि के मानसिक प्रशासन की जगह आध्यात्मिक चेतना का प्रशासन स्थापित किया जाये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २८९-९०

नूतन सृजन का सौन्दर्य (ओरोवील का सौन्दर्य)

प्रभु को अधिक अच्छी तरह प्रकट करने के लिए
नूतन सृजन चेष्टा करता है।
(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ)

वानस्पतिक नाम : Hibiscus rosa-sinensis 'Debbie Ann'

तुम कहते हो कि ओरोवील एक स्वप्न है। हाँ, यह प्रभु का "स्वप्न" है और प्रायः ये "स्वप्न" **सत्य** निकलते हैं—तथाकथित मानव वास्तविकताओं की अपेक्षा बहुत अधिक वास्तविक!

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २०५

ओरोवील का जन्म

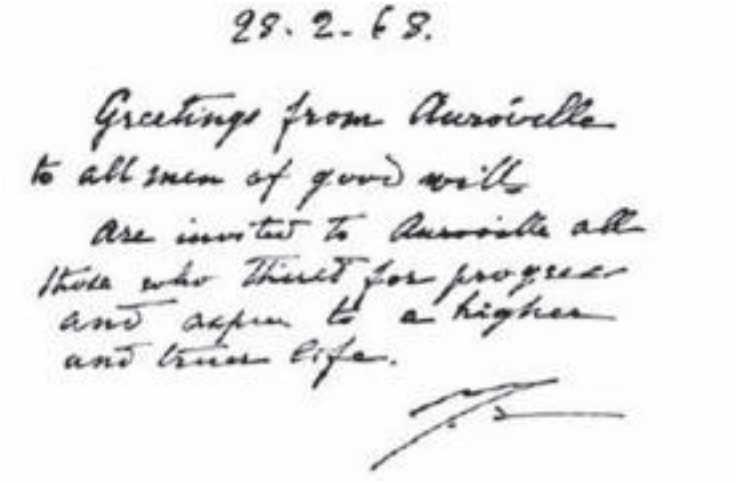

२८ फ़रवरी १९६८

(ओरोवील के उद्घाटन के लिए सन्देश)

सभी शुभेच्छुओं को ओरोवील की ओर से अभिनन्दन।

निमन्त्रण है उन सबको जो प्रगति के प्यासे हैं और उच्चतर और सत्यतर जीवन के लिए अभीप्सा करते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २०७-०८

ओरोवील का घोषणा-पत्र

१) ओरोवील किसी व्यक्ति-विशेष का नगर नहीं है। ओरोवील पूरी मानवजाति का है।

किन्तु इसमें रहने के लिए व्यक्ति को 'भागवत चेतना' का सहर्ष सेवक बनना होगा।

२) ओरोवील अन्तहीन शिक्षा का, सतत विकास एवं एक ऐसे यौवन का स्थल होगा जिसे कभी बुढ़ापा नहीं व्यापेगा।

३) ओरोवील भूतकाल एवं भविष्य के मध्य एक सेतु बनना चाहता है।

अन्तर और बाहर की सभी खोजों से लाभान्वित होता हुआ, ओरोवील साहसपूर्वक भविष्य की उपलब्धियों की ओर छलाँग लगायेगा।

४) ओरोवील एक वास्तविक मानव एकता को सजीव रूप में मूर्तिमन्त करने के लिए भौतिक एवं आध्यात्मिक खोजों का स्थान होगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २०८

नूतन सृजन की उपलब्धि (ओरोवील की उपलब्धि)

इसी के लिए हमें तैयारी करनी होगी।

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ)

वानस्पतिक नाम : Hibiscus rosa-sinensis 'Vasco'

भगवान् का इच्छुक सेवक होना चाहिये

ओरोवील के घोषणा-पत्र की पहली धारा "ओरोवील में रहने के लिए व्यक्ति को 'भागवत चेतना' का इच्छुक और तत्पर सेवक होना चाहिये" के बारे में।

इस समय ओरोवील के बारे में यह एक बड़ा विवादास्पद विषय बना हुआ है। घोषणा-पत्र में मैंने "भागवत चेतना" रखा है, इसलिए वे कहते हैं: "यह हमें ख़ुदा की याद दिलाता है।" मैंने कहा *(माताजी हँसती हैं)* : "मुझे तो यह ख़ुदा की याद नहीं दिलाता!"

इसलिए कुछ इसे "उच्चतम चेतना" में अनूदित करते हैं, दूसरे कुछ और कहते हैं। मैंने रूसी लोगों के "पूर्ण चेतना" शब्द रखने से सहमति प्रकट की, लेकिन यह लगभग समान है... और वह 'तत्' है—जिसका कोई नाम नहीं और जिसकी कोई परिभाषा नहीं—परम 'शक्ति'। यह वह 'शक्ति' है जिसे व्यक्ति पाता है। और परम 'शक्ति' केवल एक पहलू है: वह पहलू जो सर्जन से सम्बद्ध है।

आख़िर एक ऐसा स्थान...

आख़िर एक ऐसा स्थान जहाँ व्यक्ति केवल प्रगति करने और अपने से ऊपर उठने के बारे में ही सोच सकेगा।

आख़िर एक ऐसा स्थान जहाँ व्यक्ति शान्ति में, राष्ट्रों, धर्मों और महत्त्वाकांक्षाओं के संघर्ष और स्पर्धा के बिना रह सकेगा।

आख़िर एक ऐसा स्थान जहाँ किसी चीज़ को यह अधिकार न होगा कि अपने-आपको अनन्य सत्य के रूप में आरोपित करे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २९२, २११

आश्रम और ओरोवील

आश्रम केन्द्रीय चेतना है, ओरोवील बाह्य अभिव्यक्तियों में से एक है। दोनों स्थानों पर समान रूप से भगवान् के लिए काम किया जाता है।

आश्रम में रहने वालों के पास अपने काम हैं और उनमें से अधिकतर इतने व्यस्त हैं कि ओरोवील को समय नहीं दे सकते।

हर एक को अपने-अपने काम में व्यस्त रहना चाहिये; समुचित व्यवस्था के लिए यह ज़रूरी है। —'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २२१

भविष्य के बारे में सोचने के भाव में और भगवान् की सेवा करने के बारे में कोई मौलिक भेद नहीं है।

लेकिन यह माना जाता है कि आश्रम के लोगों ने अपना जीवन योग के लिए अर्पित कर दिया है (निश्चय ही, विद्यार्थी अपवाद हैं जो यहाँ केवल अध्ययन के लिए आये हैं और उनसे यह आशा नहीं की जाती कि उन्होंने अपने जीवन का चुनाव कर लिया है)।

जब कि ओरोवील में प्रवेश पाने हेतु, मानवजाति की प्रगति के लिए सामूहिक परीक्षण करने की सद्भावना काफ़ी है।

(यूनेस्को-समिति के लिए लिखा गया)

श्रीअरविन्द के अन्तर्दर्शन को मूर्त रूप देने का काम श्रीमाँ को सौंपा गया था। उन्होंने नये जगत्, एक नयी मानवजाति, नवीन चेतना को मूर्त रूप देने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए एक नये समाज के सृजन के कार्य का बीड़ा उठाया है। वस्तुओं के स्वभाव के अनुसार, यह एक सामूहिक आदर्श है जिसे चरितार्थ करने के लिए सामूहिक प्रयास की ज़रूरत है ताकि वह समग्र मानवीय पूर्णता के रूप में उपलब्ध हो सके।

श्रीमाँ के द्वारा स्थापित और निर्मित आश्रम इस लक्ष्य को चरितार्थ करने के लिए पहला क़दम था। ओरोवील-योजना दूसरा, अधिक बाहरी क़दम है—जो अन्तरात्मा और शरीर, आत्मा और प्रकृति, स्वर्ग और धरती में, मानवजाति के सामुदायिक जीवन में सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए इस प्रयास के आधार को प्रशस्त करता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २१९-२०

यूनेस्को के लिए सन्देश

ओरोवील पृथ्वी पर अतिमानसिक 'सद्वस्तु' के आगमन की गति को तेज़ करने के लिए है। उन सब लोगों के सहयोग का स्वागत है जिन्हें लगता है कि जगत् जैसा होना चाहिये वैसा नहीं है।

हर एक को जानना चाहिये कि वह मृत्यु के लिए तैयार पुराने जगत् के साथ मेल-जोल रखना चाहता है, या नये और अधिक अच्छे जगत् के साथ जो जन्म लेने की तैयारी कर रहा है। —'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २३२-३३

ओरोवील का उद्देश्य

आसन्न संकट और गुह्य क्रिया

बाह्य कारणों से मैं यह देख रही थी कि आज सभी देश अपने-आपको कितनी दयनीय अवस्था में पाते हैं, सचमुच पृथ्वी पर बहुत ही दुःखदायी और ख़तरनाक अवस्थाएँ मँडरा रही हैं, और मैंने देखा कि किस तरह राष्ट्रों ने कार्य किये हैं, और किस तरह वे अधिकाधिक 'मिथ्यात्व' में जी रहे हैं जो दिनानुदिन बढ़ता ही जा रहा है, और यह कि मनुष्यों ने अपनी सारी सृजनात्मक शक्ति विनाश के भयंकर साधनों का निर्माण करने में लगा दी है, और साथ ही, कहीं उनके अन्दर यह बचकाना विचार भी बैठा हुआ है कि अगर विनाश के इन साधनों का उपयोग किया गया तो ऐसी तबाही मच जायेगी कि यह सोच कर कोई भी राष्ट्र कभी उनका उपयोग करने की बात भी नहीं सोचेगा। लेकिन वे यह नहीं जानते कि चीज़ों में एक चेतना होती है और साथ ही होती है अभिव्यक्ति की शक्ति; और विनाश के वे सभी साधन उपयोग के लिए दबाव डाल रहे हैं; और यद्यपि मनुष्य उनका इस्तेमाल नहीं करना चाहेगा, फिर भी एक अधिक प्रबल शक्ति उनका प्रयोग करने के लिए मनुष्यों को धकेलती रहेगी।

फिर, यह सब देखते हुए, इस प्रलयरूपी विनाश की निकटता भाँपते हुए, मेरे अन्दर से एक पुकार, एक अभीप्सा उठी कि कोई ऐसी चीज़ धरती पर उतर आये जो मनुष्यों की इस भूल को पूरी तरह से पोंछ दे। और वह आयी, एक उत्तर आया... मैं यह नहीं कह सकती कि मैंने उसे अपने कानों से सुना, लेकिन वह इतना स्पष्ट था, इतना प्रबल और यथार्थ कि उस पर विवाद ही नहीं किया जा सकता। मैं शब्दों में इसका अनुवाद करने के लिए बाध्य हूँ; अगर मैं उसे शब्दों में उतारूँ तो मैं कुछ इस तरह कह सकती हूँ : "इसीलिए तुमने 'ओरोवील' की रचना की।"

तो यह था वह स्पष्ट अन्तर्दर्शन कि ओरोवील शक्ति और नूतन सृष्टि का केन्द्र है... जिसके अन्दर सत्य का बीज निहित है, और यह, कि अगर वह अंकुरित होकर विकसित हो जाये तो ठीक उसके विकास की गति युद्ध-सामग्री को इकट्ठा करने की इस भूल के प्रलयंकारी परिणामों के विरोध में प्रतिक्रिया-स्वरूप होगी।

ओरोवील : अन्तिम आशा

मुझे यह बहुत ही रुचिकर लगा, क्योंकि ओरोवील के जन्म का विचार पहले नहीं आया था; वह एक 'शक्ति' थी जो क्रियारत थी, मानों निरपेक्ष की अभिव्यक्ति हो रही हो, और वह इतनी प्रबल थी, इतनी सशक्त *(जब ओरोवील का विचार श्रीमाँ के पास आया)* कि मैं लोगों से कह सकती थी, "भले ही तुम इस पर विश्वास न करो, भले ही सभी परिस्थितियाँ इसके लिए पूरी तरह से अवाञ्छनीय प्रतीत हों, लेकिन मैं जानती हूँ कि ओरोवील बन कर रहेगा। हो सकता है कि सौ साल लगें, हो सकता है, हज़ार साल लगें, मुझे मालूम नहीं, लेकिन ओरोवील का निर्माण होकर रहेगा, क्योंकि इसका आदेश आ चुका है।" तो इसकी आज्ञप्ति मिल चुकी —बहुत सरलता से, एकदम, बिना किसी विचार और चिन्तन के, 'परम आदेश' की आज्ञानुसार यह हुआ। और जब मुझसे कहा गया कि (मैं कहती हूँ, "मुझसे कहा गया," लेकिन तुम समझ रहे हो न कि मेरा मतलब क्या है), जब मुझसे कहा गया, "ठीक यही कारण है कि तुमने ओरोवील का निर्माण किया; बस यही वजह है।..." क्योंकि आसन्न संकट के विरोध में क्रिया करने की यही अन्तिम आशा थी। अगर दूसरे देशों में इस सृष्टि के लिए रस पैदा हो जाये तो धीरे-धीरे करके ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जायेगी जो मनुष्यों द्वारा की गयी भूल को मिटाने में सक्षम होगी।...

स्वाभाविक रूप से, जब मुझे वह सब दिखलाया गया, मैं तुरन्त समझ गयी; मैंने देख लिया कि किस तरह 'ओरोवील' की रचना से अदृश्य पर क्रिया होगी। वह क्रिया भौतिक या बाहरी नहीं होगी: वह अदृश्य में क्रिया होगी। और तब से मैं देशों को यह समझाने की कोशिश में लगी हूँ, निस्सन्देह, बाहरी रूप से नहीं, क्योंकि वे सभी यह सोचते हैं कि वे बहुत चतुर-चालाक हैं और उन्हें कोई कुछ भी नहीं सिखा सकता, लेकिन आन्तरिक रूप से, अदृश्य रूप से यह चल रहा है।...

यह सब तुम्हें बस यह बतलाने के लिए है कि अगर अन्य राष्ट्र ओरोवील के कार्य में हाथ बँटायें—भले बहुत कम मात्रा में ही सही—इससे उनको बहुत लाभ पहुँचेगा, बहुत अधिक लाभ, इतना लाभ कि वह उनकी क्रियाओं के अनुपात में बहुत, बहुत ज़्यादा होगा।

२१ सितम्बर १९६६ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

राष्ट्रों का सामूहिक सहयोग

मैं किसी वस्तु के सृजन के लिए देशों के सहयोग के बारे में बात कर रही हूँ। तब नहीं जब ओरोवील का कार्य सम्पन्न हो जायेगा : मैं इसके सृजन के समय राष्ट्रों के सहयोग की चर्चा कर रही हूँ—यानी, 'सत्य' की बुनियाद पर रखी नगरी के बारे में कह रही हूँ, 'मिथ्यात्व' में की गयी अन्य रचनाओं की होड़ के बारे में नहीं। तब नहीं जब ओरोवील तैयार हो जायेगा—जब वह तैयार हो जायेगा तब वह दूसरे शहरों की तरह एक शहर होगा और सत्य की अपनी क्षमता के अनुसार ही उसके अन्दर शक्ति होगी... यह देखना बाक़ी है।

मूल बात है—'मिथ्यात्व' पर रखी विनाश की शक्ति की रचना के स्थान पर, 'सत्य' की बुनियाद पर रखी रचना में सामूहिक रस लेना (निस्सन्देह, बिना किसी पारस्परिक अनुराग के)। हाँ, तो ओरोवील का अर्थ है—उस विनाशकारी शक्ति को हटाने का प्रयास। यह सचमुच एक बड़ी आशा है —इसकी नींव आशा पर टिकी हुई है—ऐसी चीज़ करने की आशा जो इस युग में सामञ्जस्य का प्रारम्भ बन सकती है।

हाँ, यह यहीं है, ठीक यहीं है। प्रसारण की शक्ति महान् है, यह अन्दर ही अन्दर कार्य कर रही है, सचमुच यह अनुपात से कहीं ज़्यादा है, बाहरी रूप में, भले वैश्व स्तर पर इसने अभी तक पूरा ज़ोर नहीं पकड़ा है, सबको झकझोर नहीं दिया है, लेकिन इसका फैलाव होता चला जा रहा है—न्यू अफ़्रीका से प्रत्युत्तर आया है, फ़्रांस से, रूस से, अमरीका से, कनाडा से, इटली से... और भी कई देशों ने इस कार्य में बहुत दिलचस्पी दिखलायी है। केवल व्यक्तिशः ही नहीं, सामूहिक रूप में, दलों, प्रवृत्तियों, यहाँ तक कि सरकारों में भी इससे हलचल मच गयी है।

२१ सितम्बर १९६६ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

ओरोवील की आत्मा

... जब मैं लोगों से कहती हूँ कि पृथ्वी के इतिहास में, संसार के सभी दलों के सम्मिलित महत्त्व से कहीं अधिक महत्त्व ओरोवील-नगरी के जैसी सृष्टि का है, तो वे मेरा विश्वास नहीं करते। वे मेरी बात का विश्वास नहीं कर पाते, क्योंकि उनके लिए इसका कोई महत्त्व नहीं है, मात्र

कपोल-कल्पना है।

एक बार मैंने श्रीअरविन्द से पूछा था (क्योंकि हमने ओरोवील के बारे में बहुत सारी बातें की थीं, हमें कई मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था), मैंने उनसे पूछा (ओरोवील का मेरा यह विचार बहुत पुराना था—"विचार" भी नहीं, बल्कि एक आवश्यकता थी जिसने अपने-आपको क़रीब तीस साल पहले अभिव्यक्त किया था—तीस से भी ज़्यादा, चालीस साल हो गये होंगे), तो मैंने उनसे पूछा, और उनका यह उत्तर था (शायद मैंने तुम्हें वह बतलाया था): **"सर्वव्यापी संघर्ष को रोकने का यह सर्वोत्तम अवसर है।"** तो ऐसी बात है।

चूँकि, उन्होंने मुझसे यह कहा था, मैं इस पर बहुत गम्भीरता से कार्य कर रही हूँ। निस्सन्देह, सचमुच यह "कहा" नहीं गया था, मैं उसे **जी** रही थी।

लेकिन मैं स्पष्ट रूप से देख रही हूँ कि लोग इस पर विश्वास नहीं करते, सच्चे दिल से कोई इसका अनुभव नहीं करता। इसलिए... बात यह है कि ओरोवील की आत्मा ने अभी तक मूर्त रूप नहीं लिया है, ठोस रूप में उसका अभी अस्तित्व नहीं है। अभी तक पार्थिव वातावरण में "ओरोवील की आत्मा" की संरचना नहीं हुई है, वह सचमुच आत्मा है... *(श्रीमाँ काफ़ी समय तक तल्लीन रहती हैं)*... वास्तव में यह है, "जटिलता में से एकता का निर्माण करना।" एकरूपता के बिना, समझ रहे हो, जटिलता के सामञ्जस्य में से एकता को ले आना, प्रत्येक वस्तु का अपने सही स्थान पर होना।...

श्रीअरविन्द का आशय यह था कि संसार की सामान्य गति विनाश की ओर बढ़ रही है, और इसकी रचना से उस शक्ति की बाढ़ को रोका जा सकेगा।

२५ अक्तूबर १९६७ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

रूपान्तर का केन्द्र

धरती पर अतिमानसिक वास्तविकता के आगमन को शीघ्रातिशीघ्र लाना ही ओरोवील का उद्देश्य है। जो लोग यह अनुभव करते और देखते हैं कि संसार वैसा नहीं है जैसा उसे होना चाहिये, उन सबकी सहायता का

स्वागत है। प्रत्येक को यह जानना चाहिये कि क्या वह उस पुराने जगत् के साथ अपना नाता बनाये रखना चाहता है जो मृत्यु के कगार पर खड़ा है, या फिर उस नूतन तथा अधिक सुन्दर जगत् के लिए कार्य करना चाहता है जो जन्म लेने के लिए तैयार है।

१ फ़रवरी १९७२ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

क्या मानवजाति के दुःख-दैन्य और समाज की अव्यवस्थाओं का एकमात्र हल ओरोवील ही है?

एकमात्र हल नहीं। यह रूपान्तरण का केन्द्र है, ऐसे मनुष्यों का एक छोटा-सा केन्द्र-बिन्दु जो अपने-आपको रूपान्तरित कर रहे हैं और जगत् के सामने एक उदाहरण रख रहे हैं। ओरोवील यही होने की आशा करता है। जगत् में जब तक अहंभावना और दुर्भावना का अस्तित्व है, व्यापक रूपान्तर असम्भव है। —'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २३७

सच्ची स्वतन्त्रता

ओरोवील से किसी ने मुझे लिखा कि उसने सोचा कि वह यहाँ किसी दूसरे की नहीं, बल्कि केवल अपनी आज्ञा का पालन करने आया है (इसी तरह का आशय था उसका), लेकिन उसने देखा कि यहाँ तो नियम और क़ानून हैं। उसने कहा, "मैं इनमें से किसी का भी पालन नहीं करूँगा; मैं एक स्वतन्त्र व्यक्ति हूँ और मैं किसी के भी आदेश के अनुसार नहीं चलूँगा।" यह बात मेरे पास पहुँची, स्वाभाविक रूप से मैंने उसे लिखा, "व्यक्ति केवल तभी स्वतन्त्र होता है जब वह भगवान् के प्रति सचेतन हो जाता है और इस बात के प्रति सचेतन हो जाता है कि हर एक के अन्दर भगवान् ही निर्णय ले रहे हैं, अन्यथा व्यक्ति अपनी कामनाओं, अपनी आदतों, सभी प्रथाओं, सभी नियमों तथा क़ानूनों का दास बना रहता है..." मैंने उसे यह उत्तर भेजा, फिर वह शान्त हुआ।

... और जितना अधिक मनुष्य सोचते हैं कि वे स्वतन्त्र हैं, उतने ही अधिक वे बँधे हुए होते हैं!

७ फ़रवरी १९७० *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

भावी नगरी का निर्माण

सच्चाई की आवश्यकता

... हम यहाँ अतिमानवता को तैयार करने के लिए हैं, कामनाओं में गिर जाने और आरामदेह जीवन बिताने के लिए क़तई नहीं हैं।

लोगों को इसे महसूस करना चाहिये; यह चीज़ हमारे अन्दर इतनी प्रबल हो जानी चाहिये कि हम अपनी सच्चाई की शक्ति-मात्र से इन निम्न आवेगों को खदेड़ बाहर निकाल दें—लोगों को अपने अन्दर यह अनुभव करना चाहिये। तब हम वह होंगे जो हमें सचमुच होना चाहिये। उपलब्धि की शक्ति—उपलब्धि की सच्चाई की शक्ति—एक ऐसी वस्तु है जो उन लोगों के लिए असह्य हो जाती है जो कपटी हैं।...

अगर अपनी पूरी निष्कपटता के साथ हम भगवान् की तरफ़ रहें, तब हमें जो बनना चाहिये हम बन जाते हैं।

यह बात श्रीअरविन्द ने हमेशा कही है। काश! मनुष्य इसे जान पाते: अगर अपनी पूरी निष्कपटता के साथ—पूरी-सच्ची निष्कपटता के साथ—वे स्वयं को भगवान् के प्रति न्योछावर कर दें, भगवान् के पक्ष में खड़े रहें, तो वे अपनी सम्पूर्णता में वह बन जायेंगे जो उन्हें बनना चाहिये।

इसमें समय लग सकता है, विक्षोभ और कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं—लेकिन तुम्हें... डटे रहना होगा: मैं 'भगवान्' के लिए और भागवत अभिव्यक्ति के लिए हूँ, भले आकाश-पाताल एक क्यों न हो जायें। बस, इतना ही। तब वह सर्वशक्तिमत्ता होती है—*यहाँ तक कि मृत्यु के ऊपर भी।*

मैं यह नहीं कह रही कि यह कल ही हो जायेगा, मैं नहीं कह रही कि यह आनन-फ़ानन हो जायेगा, लेकिन... यह पूर्ण निश्चिति है।

४ अप्रैल १९७२ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

*जब तक तुम किसी के **पक्ष में** और किसी के विपक्ष में हो, तुम निश्चित रूप से **'सत्य' के बाहर** हो।*

तुम्हें अपने हृदय में निरन्तर सद्भावना और प्रेम रखना चाहिये और उन्हें सभी के ऊपर शान्ति और समता के साथ उँडेलना चाहिये।

—श्रीमाँ

ओरोवील में रहने की शर्तें

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से, आवश्यक शर्तें ये हैं :

(१) मानवजाति की मौलिक एकता के बारे में विश्वास होना और उस एकता को मूर्त रूप से चरितार्थ करने के लिए सहयोग देने की इच्छा रखना;

(२) उस सबमें सहयोग देने की इच्छा जो भावी उपलब्धियों को आगे बढ़ा सके।

जैसे-जैसे उपलब्धि आगे बढ़ेगी भौतिक शर्तों को रूप दिया जायेगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २०६-०७

भविष्य की ओर अभियान का अर्थ है, भविष्य हमें जो दे सकता है उसे पाने के लिए सभी भौतिक और नैतिक लाभों को छोड़ने के लिए तैयार रहना।

ऐसे बहुत कम हैं; यद्यपि ऐसे बहुत-से हैं जो उसे पाना चाहेंगे जिसे 'भविष्य' ला रहा है, लेकिन वे नयी सम्पदा पाने के लिए उनके पास जो कुछ है उसे छोड़ने को तैयार नहीं हैं।

व्यक्ति आराम और कामनाओं की तुष्टि के लिए ओरोवील नहीं आता; वह आता है चेतना के विकास के लिए और जिस 'सत्य' को चरितार्थ करना है उसके प्रति एकनिष्ठ होने के लिए।

ओरोवील के सृजन में भाग लेने के लिए निःस्वार्थता पहली आवश्यकता है।

भगवती माँ, ओरोवील का निर्माण मनुष्य द्वारा आध्यात्मिकता को स्वीकार करने पर कहाँ तक निर्भर है?

मेरे लिए आध्यात्मिकता और भौतिक जीवन के बीच विरोध का, इन दोनों के विभाजन का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि सच तो यह है कि जीवन और आत्मा एक हैं और भौतिक कर्म में तथा भौतिक कर्म के द्वारा उच्चतम 'आत्मा' को अभिव्यक्त करना होगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २१२

(ओरोवील की पहली वर्षगाँठ पर सन्देश)

स्वाधीनता भगवान् के साथ ऐक्य में ही सम्भव है।

भगवान् के साथ एक होने के लिए तुम्हें अपने अन्दर कामना की सम्भावना तक पर विजय पा लेनी चाहिये।

हम ओरोवील में जो स्वाधीनता प्राप्त करना चाहते हैं वह स्वच्छन्दता नहीं है जिसमें हर एक अपनी मरज़ी के मुताबिक़, समस्त संगठन की भलाई के बारे में सोचे बिना, कर्म करता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २१६

ओरोवील और धर्म

हम 'सत्य' चाहते हैं।

अधिकतर लोग, अपने-आप जो चाहते हैं उसी पर सत्य का *लेबल* लगा देते हैं।

ओरोवीलवासियों को 'सत्य' की चाह होनी चाहिये, चाहे वह कुछ भी क्यों न हो।

ओरोवील उनके लिए है जो मूलतः दिव्य जीवन जीना चाहते हैं और जो पुराने, नये, नूतन या भावी सभी धर्मों को त्याग देंगे।

'सत्य' का ज्ञान केवल अनुभूति में ही हो सकता है।

जब तक भगवान् की अनुभूति न हो जाये तब तक किसी को भगवान् के बारे में बोलना नहीं चाहिये।

भगवान् की अनुभूति प्राप्त करो, उसके बाद ही तुम्हें भगवान् के बारे में बोलने का अधिकार होगा।

धर्मों का वस्तुपरक, तटस्थ अध्ययन मानवजाति और मानव चेतना के विकास के अध्ययन का एक भाग होगा।

धर्म मानवजाति के इतिहास का एक भाग हैं और ओरोवील में उनका अध्ययन इसी रूप में होगा—ऐसी मान्यताओं के रूप में नहीं जिन्हें व्यक्ति को मानना या न मानना चाहिये, बल्कि मानव चेतना के विकास की उस प्रक्रिया के अंग के रूप में जो मनुष्य को उसकी अगली उपलब्धि की ओर ले जाये।

हमारा शोध किन्हीं रहस्यवादी उपायों से प्रभावित शोध न होगा। हम स्वयं जीवन में ही भगवान् को पाने की इच्छा रखते हैं। और इसी शोध के द्वारा जीवन सचमुच रूपान्तरित हो सकता है।...

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २२२-२३

रहस्यवादी साधन से मेरा मतलब उन तरीक़ों से है जिनमें लोग जीवन से दूर चले जाते हैं, मठवासियों की तरह, जो मठों में चले जाते हैं, या यहाँ के संन्यासियों की तरह, जो आध्यात्मिक जीवन की खोज के लिए जीवन का त्याग कर देते हैं, जो दोनों में भेद करके कहते हैं: "या तो यह या वह।" हम कहते हैं: "यह सच नहीं है।" जीवन में और जीवन को पूरी तरह जीकर ही मनुष्य आध्यात्मिक जीवन जी सकता है, कि उसे आध्यात्मिक जीवन में जीना **चाहिये**। परम चेतना को **यहाँ** लाना होगा। शुद्ध भौतिक और जड़-भौतिक दृष्टिकोण से, मनुष्य ही अन्तिम जाति नहीं है। जिस तरह मनुष्य पशु के बाद आया, उसी तरह मनुष्य के बाद दूसरी सत्ता को आना चाहिये। और चूँकि 'चेतना' एक ही है, अतः यह वही 'चेतना' होगी जो मनुष्य के अनुभव पाकर अतिमानव सत्ता के अनुभव प्राप्त करेगी। इसलिए अगर हम चले जायें, अगर हम जीवन को छोड़ दें, जीवन का त्याग कर दें, तो हम यह करने के लिए कभी तैयार न होंगे।

लेकिन अगर तुमने श्रीअरविन्द की पुस्तकें पढ़ी होतीं, तो तुम समझ पाते, तुम यह प्रश्न न करते। यह प्रश्न इसलिए उठा कि बौद्धिक दृष्टिकोण से तैयारी की कमी है। बिना अध्ययन किये तुम सब कुछ जानना चाहते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३५९-६०

उच्चतर सत्य के सन्दर्भ में धर्म क्या है

अक्सर धर्म की धारणा भगवान् की खोज के साथ सम्बद्ध होती है। क्या धर्म को केवल इसी सन्दर्भ में समझना चाहिये? वस्तुतः, क्या आजकल धर्म के और रूप नहीं हैं?

हम संसार या विश्व की ऐसी किसी भी धारणा को धर्म का नाम दे देते हैं जिसे ऐकान्तिक 'सत्य' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसमें मनुष्य

को पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिये, साधारणतः इसलिए कि इस 'सत्य' को किसी अन्तःप्रकाश का परिणाम घोषित किया जाता है।

अधिकतर धर्म भगवान् के अस्तित्व को और उनकी आज्ञा-पालन के लिए नियमों को स्वीकार करते हैं, लेकिन कुछ सामाजिक-राजनीतिक संगठनों की तरह, नास्तिक धर्म भी हैं जो, किसी 'आदर्श' या 'प्रशासन' के नाम पर, अपनी आज्ञा मनवाने के उसी अधिकार का दावा करते हैं।

स्वाधीनता के साथ 'सत्य' की खोज करना और अपने निजी पथ द्वारा स्वतन्त्र रूप से 'सत्य' के निकट जाना मनुष्य का अधिकार है। लेकिन हर एक को यह जानना चाहिये कि उसकी खोज सिर्फ़ उसी के लिए अच्छी है और उसे दूसरों पर नहीं लादना चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २२३

धरती को आवश्यकता है

एक ऐसे स्थान की जहाँ मनुष्य समस्त राष्ट्रीय स्पर्धाओं से, सामाजिक प्रथाओं से, आत्म-विरोधी नैतिकताओं से और संघर्षरत धर्मों से दूर रह सके;

एक ऐसे स्थान की जहाँ मनुष्य अतीत की सारी दासता से मुक्त होकर, अपने-आपको उस 'दिव्य चेतना' की खोज में पूरी तरह लगा सके जो वहाँ अभिव्यक्त होने की कोशिश कर रही है।

ओरोवील ऐसा ही स्थान होना चाहता है और अपने-आपको उन लोगों को अर्पण करना चाहता है जो आगामी कल के 'सत्य' को जीने की अभीप्सा करते हैं।

ओरोवील उन लोगों के लिए आदर्श स्थान है जो अपने पास निजी सम्पत्ति न होने के आनन्द और आज़ादी का अनुभव करना चाहते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २१८

मानव एकता द्वारा शान्ति :

एकरूपता द्वारा एकता एक बेतुकी बात है।
एकता को 'बहु' के मिलन द्वारा चरितार्थ करना चाहिये।
हर एक एकता का अंग है; हर एक समग्र के लिए अनिवार्य है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २१८

सच्चा ओरोवीलवासी बनने के लिए

१. पहली आवश्यकता है आन्तरिक शोध की ताकि मनुष्य यह जान सके कि सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक, जातीय और आनुवंशिक आभासों के पीछे सचमुच वह है क्या।

केन्द्र में एक स्वतन्त्र, विशाल और सजग सत्ता है जो हमारी खोज की प्रतीक्षा कर रही है और जिसे हमारी सत्ता और ओरोवील में हमारे जीवन का सक्रिय केन्द्र बनना चाहिये।

२. व्यक्ति ओरोवील में नैतिक और सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त होने के लिए रहता है; लेकिन यह मुक्ति अहं, उसकी कामनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं की नयी दासता नहीं होनी चाहिये।

व्यक्ति की कामनाओं की पूर्ति आन्तरिक खोज के मार्ग को रोक देती है जिसे केवल शान्ति और पूर्ण अनासक्ति की पारदर्शकता में ही पाया जा सकता है।

३. ओरोवीलवासी को व्यक्तिगत स्वामित्व-भाव को बिलकुल भूल जाना चाहिये। क्योंकि हमारी भौतिक जगत् की यात्रा में, हमें जो स्थान लेना है उसके अनुसार, हमारे जीवन और हमारे कार्य के लिए जो कुछ अनिवार्य है वह हमारे लिए जुटा दिया जाता है।

हम अपनी आन्तरिक सत्ता के साथ जितने अधिक सचेतन रूप से सम्पर्क रखते हैं उतने ही अधिक ठीक-ठीक उपाय हमें दिये जाते हैं।

४. काम, हाथ का काम भी, आन्तरिक शोध के लिए अनिवार्य वस्तु है। अगर व्यक्ति काम न करे, अगर अपनी चेतना को जड़-भौतिक में न डाले, तो जड़ कभी विकसित न होगा। चेतना को अपने शरीर द्वारा कुछ भौतिक तत्त्व को संगठित करने देना बहुत अच्छा है। अपने चारों तरफ़ व्यवस्था करना अपने अन्दर व्यवस्था लाने में सहायता देता है।

व्यक्ति को अपना जीवन बाहरी और कृत्रिम नियमों के अनुसार नहीं, बल्कि एक व्यवस्थित आन्तरिक चेतना द्वारा संगठित करना चाहिये, क्योंकि अगर व्यक्ति जीवन को उच्चतर चेतना के संयम के अधीन न रख कर यूँ ही चलने दे, तो वह अस्थिर और अर्थशून्य हो जाता है। यह इस अर्थ में अपने समय का अपव्यय होगा कि जड़-भौतिक बिना किसी सचेतन उपयोग के जैसे-का-तैसा ही बना रहेगा।

५. सारी पृथ्वी को नयी जाति के आविर्भाव के लिए तैयार होना होगा, और ओरोवील इस आविर्भाव को शीघ्र लाने के लिए सचेतन रूप से काम करना चाहता है।

६. थोड़ा-थोड़ा करके हमारे सामने यह व्यक्त किया जायेगा कि यह नयी जाति कैसी होगी, और तब तक के लिए सबसे अच्छा रास्ता यही है कि अपने-आपको पूरी तरह से भगवान् को अर्पण करते रहा जाये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २२४-२५

हमेशा प्रगति की जा सकती है

व्यावहारिक होने के लिए, सबसे पहले तुम्हें अपने लक्ष्य की, तुम जहाँ जा रहे हो उसकी, बहुत स्पष्ट धारणा होनी चाहिये। इस दृष्टिकोण से, उदाहरण के लिए, धन को लो। एक आदर्श जो हो सकता है अपने समय से सैकड़ों वर्ष आगे है, पता नहीं : धन को एक ऐसी शक्ति होना चाहिये जो किसी की न हो और उसे वर्तमान की सबसे बड़ी वैश्व प्रज्ञा के नियन्त्रण में होना चाहिये। पृथ्वी पर किसी ऐसे के हाथों में जिसे पर्याप्त विस्तृत अन्तर्दर्शन प्राप्त हो ताकि वह पृथ्वी की आवश्यकताएँ जान सके और ठीक-ठीक यह बताने में समर्थ हो कि धन कहाँ जाना चाहिये—तुम समझ रहे हो न, हम इस चीज़ से बहुत दूर हैं, हैं न? फ़िलहाल तो व्यक्ति अब भी कहता है : "यह मेरा है," और अगर वह उदार हो, तो कहता है : "मैं तुम्हें देता हूँ।" इससे बात नहीं बनती।

लेकिन हम जो हैं और हमें जो होना चाहिये उसके बीच बहुत लम्बा रास्ता है। और उसके लिए हमें बहुत नमनीय बनना चाहिये, अपने लक्ष्य को दृष्टि से कभी ओझल न होने देते हुए यह भी जानना चाहिये कि एक ही छलाँग में तुम उस तक नहीं पहुँच सकते, कि तुम्हें रास्ता ढूँढ़ना होगा। हाँ, यह अधिक कठिन है, आन्तरिक खोज से भी अधिक कठिन। असल में तो, यह यहाँ आने से पहले ही हो जाना चाहिये था।

क्योंकि एक आरम्भ-बिन्दु होता है : जब तुमने अपने अन्दर उस निष्कम्प प्रकाश को पा लिया हो, उस उपस्थिति को जो विश्वास के साथ तुम्हारा पथ-प्रदर्शन कर सके, तब तुम इस बात से सचेतन हो जाते हो कि निरन्तर, चाहे कुछ भी हो, हमेशा कुछ सीखा जा सकता है, और यह कि वर्तमान हालात में हमेशा प्रगति करनी है। इसी तरह व्यक्ति को यहाँ आना

चाहिये, जो प्रगति करनी है उसे जानने के लिए वह हर क्षण उत्सुक हो। एक ऐसा जीवन हो जो बढ़ना और अपने-आपको पूर्ण बनाना चाहे, इसी को ओरोवील का सामूहिक आदर्श होना चाहिये: "ऐसा जीवन जो बढ़ना और अपने-आपको पूर्ण बनाना चाहता है," और सबसे बढ़ कर, हर एक के लिए एक ही तरीक़े से नहीं—हर एक के अपने ही तरीक़े से।

चेतना के विकास की कोई सीमा नहीं होती

हाँ तो, अब तुम तीस हो, यह कठिन है, है न? जब तुम तीस हज़ार होओगे, तब यह ज़्यादा आसान होगा, क्योंकि, स्वभावतः, तब बहुत अधिक सम्भावनाएँ होंगी। तुम अग्रगामी हो, तुम्हारा काम सबसे कठिन है, परन्तु मुझे लगता है कि यह सबसे ज़्यादा मज़ेदार है। क्योंकि तुम्हें उस ठोस, स्थायी और प्रगतिशील मनोभाव को स्थापित करना है जो सच्चा ओरोवीलवासी होने के लिए ज़रूरी है। सच्चा ओरोवीलवासी होने के लिए ज़रूरी पाठ रोज़-रोज़ सीखना है। हर रोज़, रोज़ का पाठ सीखना...। हर सूर्योदय एक खोज करने का अवसर है। तो, ऐसी मानसिक अवस्था के साथ, तुम पता लगाओ। हर एक यही करे।

और शरीर को कामकाज की ज़रूरत होती है: अगर तुम उसे निष्क्रिय रखो, तो वह बीमार पड़ कर या और कुछ ऐसा ही करके विद्रोह करना शुरू कर देगा। उसे किसी काम की ज़रूरत होती है, उसे सचमुच काम की ज़रूरत होती है, उदाहरण के लिए, फूलों के पौधे लगाने, मकान बनाने जैसी भौतिक चीज़ों की ज़रूरत होती है। तुम्हें उसे अनुभव करना चाहिये। कुछ लोग कसरत करते हैं, कुछ बाइसिकल चलाते हैं, असंख्य काम हैं, लेकिन तुम्हारे छोटे-से दल में तुम्हें किसी समझौते पर पहुँचना चाहिये ताकि हर एक को ऐसा काम मिल जाये जो उसके स्वभाव से, उसकी प्रकृति से और उसकी आवश्यकता से मेल खाता हो। लेकिन विचारों के साथ नहीं। विचार किसी काम के नहीं होते, वे तुम्हें पूर्वधारणाएँ देते हैं, जैसे: "वह काम अच्छा है, वह मेरे लायक नहीं है," और इसी प्रकार का बेहूदापन। कोई काम बुरा नहीं होता—बुरे होते हैं बस काम करने वाले। अगर तुम ठीक तरह से करना जानो तो सभी काम अच्छे होते हैं। सब कुछ। और यह एक तरह का सम्पर्क स्थापित करना होता है। अगर तुम इतने भाग्यवान् हो कि अन्दर की ज्योति

के बारे में सचेतन होओ, तो तुम देखोगे कि अपने शारीरिक काम में, तुम मानों भगवान् को नीचे, वस्तुओं में बुला रहे हो; तब यह सम्पर्क बहुत ठोस हो जाता है, अन्वेषण के लिए एक पूरा जगत् सामने होता है, यह अद्‌भुत है।

तुम युवा हो, तुम्हारे सामने बहुत समय है। और युवा होने के लिए, वास्तव में युवा होने के लिए, हमें हमेशा, हमेशा बढ़ते रहना, विकसित होना और प्रगति करते रहना चाहिये। वृद्धि यौवन का लक्षण है और चेतना की वृद्धि की कोई सीमा नहीं।

मैं बीस वर्ष के बूढ़ों और पचास, साठ, सत्तर के युवकों को जानती हूँ। और अगर तुम शारीरिक काम करो, तो स्वस्थ रहते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३३८-४०

आध्यात्मिक सौन्दर्य की शक्ति (ओरोवील का आध्यात्मिक सौन्दर्य)

आध्यात्मिक सौन्दर्य में संक्रामक शक्ति होती है।

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ)

वानस्पतिक नाम : Hibiscus Hawaiian

हर एक का अपना समाधान होता है, और यही बड़ी मुश्किल है। 'सत्य' में पहुँचने के लिए, हर एक का अपना समाधान है। फिर भी हमें साथ मिल कर काम करने के लिए कोई रास्ता निकालना चाहिये।

तो ढाँचा विशाल होना चाहिये, बहुत लचीला, और हर एक की ओर से महान् सद्‌भावना : यह पहली शर्त है—पहली वैयक्तिक शर्त—सद्‌भावना। हर क्षण अच्छे-से-अच्छा कर सकने के लिए काफ़ी नमनीयता। —श्रीमाँ

ओरोवील का प्रतीक

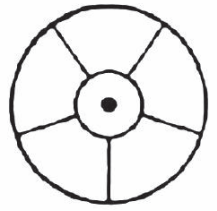

केन्द्र में जो बिन्दु है वह 'एकत्व' का, 'परम पुरुष' का प्रतिनिधित्व करता है; अन्दर का वृत्त सृष्टि का प्रतीक है, शहर की अवधारणा है; पंखुड़ियाँ अभिव्यक्त करने, चरितार्थ करने की शक्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २२९

मरने से पहले, मिथ्यात्व अपनी पूरी पेंग में उठता है।

अभी तक मनुष्य केवल विध्वंस के पाठ को ही समझता है। क्या मनुष्य के 'सत्य' की ओर आँखें खोलने से पहले उसे आना ही पड़ेगा? मैं सबसे प्रयास की माँग करती हूँ ताकि उसे न आना पड़े।

केवल 'सत्य' ही हमारी रक्षा कर सकता है, वाणी में सत्य, क्रिया में सत्य, संकल्प में सत्य, भावों में सत्य। यह 'सत्य' की सेवा करने या नष्ट हो जाने के बीच एक चुनाव है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २३५

ओरोवील के लिए आप कैसी राजनीतिक व्यवस्था चाहती हैं?

एक मज़ेदार परिभाषा मेरे दिमाग में है : भागवत अराजकता। लेकिन जगत् इसे नहीं समझेगा। मनुष्यों को अपने चैत्य के प्रति सचेतन होना चाहिये और सहज रूप से, निश्चित नियमों और विधानों के बिना, अपने-आपको व्यवस्थित करना चाहिये—यह आदर्श है।

इसके लिए, व्यक्ति को अपनी चैत्य चेतना के सम्पर्क में होना चाहिये, व्यक्ति को उसके पथ-प्रदर्शन में रहना चाहिये और अहंकार के अधिकार और प्रभाव को अदृश्य हो जाना चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २३७

सामाजिक जीवन का एक नया रूप

(किसी ने ओरोवील में बच्चे के जन्म के बारे में समुचित व्यवस्था-सम्बन्धी प्रश्न पूछा। माताजी ने सलाह दी कि वहाँ केवल डॉक्टर और पिता को उपस्थित रहना चाहिये, फिर उन्होंने जोड़ा:)

सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, शान्ति के वातावरण में निश्चल बने रहना ताकि 'शक्ति' बिना किसी बाधा के कार्य कर सके।

*

... निश्चय ही शादी-ब्याह का सारा विचार ही हास्यास्पद है क्योंकि मैं इस चीज़ को बचकाना समझती हूँ।

जानते हो, ओरोवील में शादियाँ नहीं होंगी। अगर कोई स्त्री-पुरुष आपस में प्रेम करते हैं और एक साथ रहना चाहते हैं तो वे बिना किसी रस्मो रिवाज के ऐसा कर सकते हैं। अगर वे अलग होना चाहते हैं तो यह भी पूरी छूट के साथ कर सकते हैं। जब लोगों में परस्पर प्रेम न रहे तो भला उन्हें साथ रहने के लिए क्यों विवश किया जाये?

अगर लोग इस विषय में मुक्त हो जायें तो बहुत-से अपराधों को रोका जा सकेगा। उन्हें एक-दूसरे से बातें छिपानी नहीं पड़ेंगी या एक-दूसरे से अलग होने के लिए अपराध नहीं करने पड़ेंगे। निस्सन्देह, अगर वे सचमुच आपस में प्रेम करते हों तो स्वभावतः, बिना किसी नियम के बन्धन में बँधे हमेशा साथ रहेंगे। इसीलिए ये विवाह-संस्कार और अनुष्ठान इतने बचकाने लगते हैं।

ओरोवील में जन्मे बच्चों का पारिवारिक नाम नहीं होगा। उनका केवल अपना नाम होगा।

(माताजी ने सुझाव दिया कि विवाह के सम्बन्ध में उनका निम्नलिखित पत्र उपर्युक्त वक्तव्य के साथ प्रकाशित किया जाये।)

अपने भौतिक जीवन और सांसारिक रुचियों को एक करना, जीवन की पराजयों और विजयों, कठिनाइयों और सफलताओं का एक साथ सामना

करने के लिए साथी बनना—यह विवाह का पक्का आधार है, लेकिन तुम जानते ही हो कि इतना पर्याप्त नहीं है।

संवेदनों में एक होना, समान रुचि और समान सौन्दर्यात्मक अभिरुचियाँ होना, परस्पर और आपस में समान वस्तुओं में समान रूप से स्पन्दित होना—यह अच्छा है, यह आवश्यक है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है।

गम्भीर भावनाओं में, पारस्परिक स्नेह और कोमलता की भावना में एक होना जो जीवन के सभी धक्कों के बावजूद न बदले और हर तरह की श्रान्ति, विक्षोभ और निराशा को सह जाना, सभी अवस्थाओं में और सभी परिस्थितियों में हमेशा ख़ुश रहना, सभी हालतों में एक-दूसरे की उपस्थिति में विश्राम, शान्ति और आनन्द पाना—यह अच्छा है, बहुत अच्छा है, अनिवार्य है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है।

अपने मस्तिष्कों को एक करना, अपने विचारों को सामञ्जस्यपूर्ण बनाना और एक-दूसरे का पूरक बनाना, अपनी बौद्धिक अवधारणाओं और खोजों में दोनों का हिस्सा लेना; संक्षेप में, अपने मानसिक क्रिया-कलापों के क्षेत्र को दोनों के द्वारा, एक साथ प्राप्त की हुई समृद्धि के द्वारा, विस्तृत करके एक-सा बनाना—यह अच्छा है, यह एकदम आवश्यक है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है।

इन सबके परे, गहराइयों में, केन्द्र में, सत्ता के शिखर पर, सत्ता का 'परम सत्य' स्थित है, एक 'शाश्वत प्रकाश' जो जन्म, देश, परिवेश, शिक्षा की सभी अवस्थाओं से मुक्त है; हमारी आध्यात्मिक प्रगति के 'वे' ही मूल, कारण और स्वामी हैं; 'वे' ही हमारे जीवन को स्थायी दिशा देते हैं; 'वे' ही हमारी नियति को निर्धारित करते हैं; 'उस' परम की चेतना के साथ तुम्हें एक होना है। अभीप्सा और आरोहण में एक होना, आध्यात्मिक पथ पर क़दम-से-क़दम मिला कर चलना, यही स्थायी ऐक्य का रहस्य है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २५५-५७

हम जीवन को बदलना चाहते हैं

... करने-लायक पहली चीज़ यह है कि अपने लिए कार्य न करो, भगवान् की आज्ञा के अनुसार काम करो, भगवान् की 'इच्छा' व्यक्त करने के लिए काम करो। जहाँ तक तुम्हारा सवाल है, तुम कोई आज्ञा नहीं

देते। जब तक निजी इच्छा, निजी कामना हो तब तक वह सच्ची चीज़ नहीं होती, और तुम...। इतना ही नहीं कि वह सच्ची चीज़ नहीं होती, बल्कि तुम सच्ची चीज़ को जान भी नहीं सकते! इसे *(बलपूर्वक किसी वस्तु को त्यागने की मुद्रा)*... **इसे निकाल बाहर करना चाहिये!**

इसीलिए अपने-आपमें, हम बिलकुल कुछ नहीं हैं। यह जीवन है। हम अपने लिए कार्य नहीं करते। हम अपनी निजी इच्छा और अपने निजी परिणाम के लिए कार्य नहीं करते। हम केवल भागवत 'संकल्प' के द्वारा और भागवत 'संकल्प' के लिए कार्य करते हैं। यहाँ तक कि अपने शत्रु के लिए भी बिना प्रयास, सहज रूप से, हम अत्यधिक कोमलता का अनुभव कर सकते हैं। जब तुम इसका अनुभव कर लोगे तभी तुम समझोगे। यही सारी सीमितता है, सारी सीमितता।

जब संघर्ष उठें, जो हर समय उठते रहते हैं, हम सबके लिए—तो ऐसा होता है मानों व्यक्ति तुरन्त सिकुड़ जाता है। क्योंकि यही होता है: प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्दर सिमट जाता है। लेकिन कठिनाई यह है कि जब अनुपात में तुम्हारे अन्दर निजी इच्छा कम हो, अगर तुम्हारे पास का आदमी तुमसे अपनी निजी इच्छा कहे, तो वह बिलकुल... सबसे पहले वह ज़रा-सी प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है और फिर, अगर तुम न्यूनाधिक रूप में उसके साथ सहमत होओ, तो तुम उस इच्छा को ले लेते हो, और अपने चारों ओर उसे फैलाने लगते हो। तो देखो क्या होता है। और यह सारे समय चलता रहता है। पहले एक आदमी की कोई इच्छा होती है, फिर दूसरे की, और इस तरह, बिना रुके यह चलती चली जाती है। यही सब जगह हो रहा है; सबसे मज़बूत इच्छा जीत जाती है। यह व्यर्थ है, व्यर्थ।

जब हम कहते हैं: "हम भगवान् की सेवा के लिए हैं", तो ये कोरे शब्द नहीं होते। हमें अपने-आप नहीं, बल्कि 'उन्हें' हमारे द्वारा कार्य करना चाहिये। सबसे बड़ी आपत्ति यह होती है: हम भागवत 'संकल्प' के बारे में कैसे जान सकते हैं? लेकिन वस्तुतः, मैं तुमसे कहती हूँ: अगर तुम सच्चाई के साथ अपनी निजी इच्छा का त्याग कर दो, तो तुम जान लोगे।...

हम जीवन को बदलना चाहते हैं—हम उससे दूर भागना नहीं चाहते...। अब तक जिन लोगों ने, जिसे वे भगवान् कहते हैं उसे जानने की कोशिश की, भगवान् के साथ सम्पर्क बनाने की कोशिश की तो उन्होंने जीवन को

छोड़ दिया। उन्होंने कहा: "जीवन एक बाधा है। इसलिए हम जीवन का त्याग करेंगे।" तो, भारत में, संन्यासी हैं जिन्होंने सब कुछ त्याग दिया; यूरोप में मठवासी या साधु हैं। हाँ, वे भाग सकते हैं, फिर भी जब उनका पुनर्जन्म होगा तो उन्हें सारी चीज़ को फिर से शुरू करना होगा। लेकिन जीवन जैसा-का-वैसा बना रहेगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३६१-६३

सच्चा ओरोवीलवासी होना

... सच्चा ओरोवीलवासी होने के लिए व्यक्ति को क्या होना चाहिये? तुमने ऐसा प्रश्न किया था। सच्चा ओरोवीलवासी होने के लिए व्यक्ति को क्या होना चाहिये? *('क' से)* तुम्हारे क्या विचार हैं?

> *'क': मेरे लिए, वास्तव में ओरोवीलवासी होने के लिए पहली चीज़ है, भगवान् के प्रति अपने-आपको पूरी तरह अर्पण करने का संकल्प।*

यह अच्छा है, अच्छा है यह; लेकिन ऐसे बहुत नहीं होते। *('ग' से)* ज़रा कागज़ का एक पुरज़ा देना। मैं इसे पहले नम्बर पर लिखूँगी।

(माँ लिखती हैं) "सच्चा ओरोवीलवासी होने के लिए।" मैंने इसे जान-बूझकर नम्बर १ देकर लिखा है।

तो, हम दूसरे नम्बर के बारे में देखें।

आचरण की दृष्टि से, स्थूल व्यावहारिक दृष्टि से, उदाहरण के लिए: हम सभी नैतिक और सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त होना चाहते हैं। लेकिन इस मामले में हमें बहुत सावधान होना चाहिये! तुम्हें अपने-आपको इन चीज़ों से मुक्त करके, कामनाओं की अन्धी तुष्टि में डूब कर स्वच्छन्द नहीं हो जाना चाहिये; बल्कि इनसे ऊपर उठ कर, कामनाओं का निष्कासन करके और नैतिक नियमों के स्थान पर भगवान् की आज्ञाकारिता को स्थापित करके, अपने-आपको मुक्त करना चाहिये।

*

हमें शरीर त्याग देने के लिए नहीं, ज़्यादा अच्छा बनाने के लिए दिया गया है। और ठीक यही चीज़ ओरोवील के लक्ष्यों में से एक है। मानव शरीर

को सुधारना, पूर्ण बनाना है, और उसे अतिमानव शरीर बनाना है जो मनुष्य से उच्चतर सत्ता को अभिव्यक्त करने-योग्य हो सके। और निश्चय ही अगर हम उसकी अवहेलना करें तो यह नहीं हो सकता। यह हो सकता है सम्यक् शारीरिक प्रशिक्षण, शारीरिक क्रिया-कलाप द्वारा—शरीर के व्यायामों द्वारा—जो छोटी-मोटी निजी ज़रूरतों या तुष्टियों के लिए नहीं, शरीर को उच्चतर सौन्दर्य और चेतना को अभिव्यक्त करने में सक्षम बनाने के लिए किया जाये। इसी कारण, शारीरिक प्रशिक्षण का ऊँचा स्थान है, और वह उसे देना चाहिये।...

और यह शारीरिक प्रशिक्षण पूरी जानकारी के साथ करना चाहिये, असाधारण, अद्‌भुत चीज़ें करने के लिए नहीं, बल्कि शरीर को उच्चतर चेतना को अभिव्यक्त करने-योग्य काफ़ी मज़बूत और लचीला बनाने की सम्भावना देने के लिए।

यह लम्बी सूची का एक भाग होगा।

*

लो! मैंने नम्बर २ लिख दिया: "ओरोवीलवासी कामनाओं का दास नहीं बनना चाहता।" यह एक बहुत बड़ा संकल्प है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३६४, ३६६-६७

सफलता की शक्ति (ओरोवील की सफलता)

उन लोगों की शक्ति जो अपने प्रयास को जारी रखना जानते हैं।

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ)

वानस्पतिक नाम: Hibiscus rosa-sinensis

आदतें जो चेतना को नीचे गिराती हैं

जो लोग ओरोवील में रहते हैं और अपनी पुरानी आदतों के अनुसार चलने का आग्रह करते हैं—पुरानी और नयी भी—जो चेतना को नुक़सान पहुँचाती हैं, जो चेतना को नीचा करती हैं, जैसे धूम्रपान, मदिरापान, और स्वभावतः, नशीली औषधियाँ... यह सब, ऐसा है मानों तुम अपनी सत्ता के टुकड़े-टुकड़े कर रहे हो। आश्रम में, स्वभावतः, मैंने कह दिया 'नहीं'। हम चेतना में विकसित होना चाहते हैं, हम कामनाओं के गढ़े में उतरना नहीं चाहते। जो समझने से इन्कार करते हैं उनसे मैं कहती हूँ : ओरोवील का लक्ष्य है एक नये, अधिक गभीर, अधिक जटिल, अधिक पूर्ण जीवन की खोज करना और दुनिया को यह दिखाना कि आगामी कल आज से ज़्यादा अच्छा होगा।

कुछ लोग मानते हैं कि धूम्रपान, मदिरापान आदि, आगामी कल के जीवन के भाग होंगे। यह उनका अपना मामला है। अगर वे इस अनुभव में से गुज़रना चाहते हैं, तो उन्हें करने दो। वे देखेंगे कि वे अपने-आपको अपनी ही कामनाओं के बन्दी बना रहे हैं। बहरहाल, मैं नैतिकतावादी नहीं हूँ, बिलकुल नहीं, बिलकुल नहीं, बिलकुल नहीं। यह उनका अपना मामला है। अगर वे इस अनुभव में से गुज़रना चाहते हैं, तो भले कर लें। लेकिन आश्रम इसका स्थान नहीं है। भगवान् की कृपा से आश्रम में हमने सीख लिया है कि जीवन कुछ और चीज़ है। सच्चा जीवन कामनाओं की तृप्ति नहीं है। मैं अनुभव से यह प्रमाणित कर सकती हूँ कि स्वापक औषधियों के द्वारा लायी गयी सभी अनुभूतियाँ, अदृश्य जगत् के साथ यह सारा सम्पर्क, स्वापक औषधियों के बिना ज़्यादा अच्छी तरह, ज़्यादा सचेतन और संयत ढंग से मिल सकता है। सिर्फ व्यक्ति को अपने ऊपर संयम रखना होगा। यह ज़हर निगलने से ज़्यादा कठिन है। लेकिन मैं उपदेश देने नहीं बैठूँगी।

जब ओरोवील उच्चतर जीवन का उदाहरण बन जायेगा, जब वह सभी कामनाओं पर विजय पा चुकेगा और अपने-आपको उच्चतर शक्तियों की ओर खोल देगा, तब हम हर जगह जा सकेंगे। जब ओरोवीलवासी जगत् में घूमती-फिरती ज्योतियाँ बन जायेंगे, तो उनका स्वागत होगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३७५-७६

हम यहाँ भगवान् की ओर मुड़ने के लिए आये हैं

मुझे क़ानूनों और प्रथाओं की परवाह नहीं है। लेकिन मैं जिस चीज़ को अवश्य चाहती हूँ वह एक अधिक दिव्य जीवन हो, पाशविक जीवन नहीं।...

हम सब यहाँ कामनाओं को त्यागने के लिए, भगवान् की ओर मुड़ने के लिए और भगवान् के बारे में सचेतन होने के लिए हैं। हम जिन भगवान् को खोजते हैं वे सुदूर और अगम्य नहीं हैं। वे अपनी सृष्टि के हृदय में हैं और चाहते हैं कि हम उन्हें खोजें, और अपने निजी रूपान्तर द्वारा उन्हें जानने के योग्य बनें, उनके साथ एक होने और अन्त में, सचेतन रूप से उन्हें अभिव्यक्त करने-योग्य बनें। हमें अपने-आपको इसके लिए अर्पित करना चाहिये, हमारे जीवन का यही सच्चा प्रयोजन है। और इस उच्चतर उपलब्धि के लिए हमारा पहला क़दम है, अतिमानसिक 'चेतना' की अभिव्यक्ति।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३७७

सुव्यवस्था, सामञ्जस्य और सौन्दर्य के लिए प्रयास करो

हमें 'सुव्यवस्था', 'सामञ्जस्य', 'सौन्दर्य' तथा... सामूहिक अभीप्सा के लिए प्रयास करना चाहिये—उन सभी चीज़ों के लिए प्रयास जो अभी नहीं हैं। हमें... चूँकि... व्यवस्थापक होने के नाते हमारा कार्य है, हम जैसा चाहते हैं कि दूसरे करें, उसके लिए हमें स्वयं उदाहरण बनना होगा। हमें व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं से ऊपर उठना और ऐकान्तिक रूप से भागवत 'इच्छा' के साथ समस्वर होना तथा भागवत 'इच्छा' का विनीत यन्त्र बनना होगा—हमें निर्वैयक्तिक होना होगा, किसी भी वैयक्तिक प्रतिक्रिया के बिना कार्य करना होगा।

हमें अपनी पूरी निष्कपटता में "बनना" होगा। 'प्रभु' जो चाहते हैं वही हो। बस इतना ही। अगर हम वह हो सकें, तब हम वह बन जायेंगे जो हमें बनना चाहिये, हमें बस इसी की चाह करनी चाहिये...

मैं जानती हूँ कि यह आसान नहीं है, लेकिन हम यहाँ आसान चीज़ें करने के लिए नहीं हैं। मैं चाहूँगी कि लोग यह अनुभव करें कि ओरोवील में आना किसी सरल जीवन में प्रवेश करना नहीं है—इसका अर्थ है, प्रगति के लिए भीमकाय प्रयास करने की हिम्मत रखना। और जो इसके साथ क़दम मिला कर नहीं चलना चाहते उन्हें यह स्थान छोड़ देना चाहिये।

बात यही है। मैं चाहती हूँ कि यह चीज़ बहुत प्रबल हो—प्रगति करने की आवश्यकता, अपनी सत्ता को दिव्य बनाने की इतनी तीव्र अभीप्सा हो—कि जो इसमें संगति न बिठा पायें (जो असमर्थ हों या अनिच्छुक हों) वे स्वयं ही यहाँ से चले जायें : "ओह, मैं ऐसे जीवन की आशा नहीं कर रहा था।" तो, बात यही है—वे सभी जो आरामदेह जीवन जीना और अपनी मौजों के अनुसार—जो मरज़ी, जैसे मरज़ी—जीवन बिताना चाहते हैं और कहते हैं, "चलो, ओरोवील चलें!" यह जगह उनके लिए नहीं है। इसका ठीक उलटा होना चाहिये। लोगों को पता होना चाहिये कि ओरोवील आने का अर्थ है—प्रगति के लिए प्रायः एक अतिमानवीय प्रयास करना।

सचमुच हमारी मनोवृत्ति तथा हमारे प्रयास की सच्चाई से ही अन्तर पड़ता है। लोगों को यह अनुभव करना चाहिये कि यहाँ कपट और मिथ्यात्व के लिए कोई स्थान नहीं है—ये चीज़ें यहाँ नहीं चलेंगी। तुम उन लोगों को छल नहीं सकते जिन्होंने अपना सारा जीवन मानवता के परे जाने के लिए समर्पित कर दिया है। बस, यही है युक्तियुक्त बात—सच्चा बनना। तब हम डट कर खड़े रहेंगे और हमारे साथ खड़ी होगी समस्त भागवत शक्ति। हम यहाँ अतिमानवता को तैयार करने आये हैं, कामनाओं तथा सुखद जीवन की तली में गिरने नहीं—कदापि नहीं।

४ अप्रैल १९७२ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

नूतन सृजन की प्रगति (ओरोवील की प्रगति)

प्रत्येक को अपनी प्रगति के अनुकूल कार्य खोजना चाहिये।
(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ)

वानस्पतिक नाम : Hibiscus rosa-sinensis

मातृमन्दिर

(मातृमन्दिर की नींव रखने के समय श्रीमाँ ने यह सन्देश दिया :)

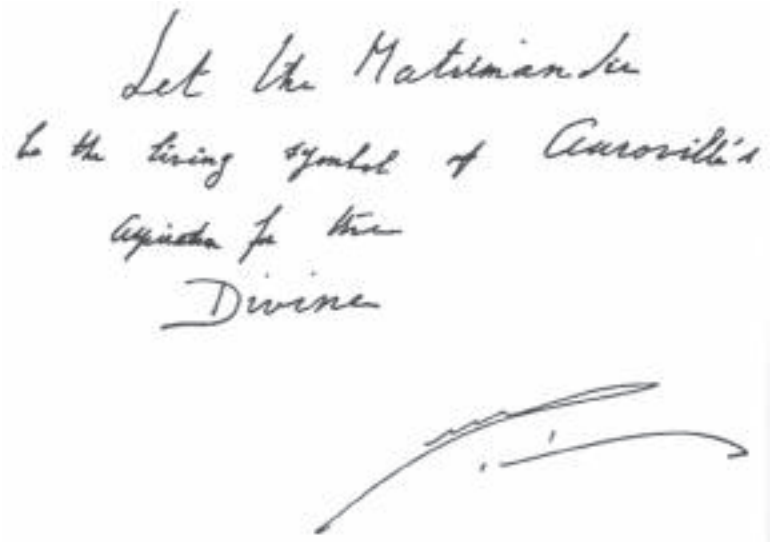

"मातृमन्दिर भगवान् के प्रति ओरोवील की अभीप्सा का जीवन्त प्रतीक हो।"

*

मातृमन्दिर ओरोवील की आत्मा होगा।

जितनी जल्दी आत्मा आ जाये, उतना ही अधिक अच्छा, सभी के लिए, विशेषकर ओरोवीलवासियों के लिए।

*

मातृमन्दिर मनुष्य की पूर्णता की अभीप्सा के लिए भगवान् के उत्तर का प्रतीक बनना चाहता है।

प्रगतिशील मानव एकता में अभिव्यक्त होते हुए भगवान् के साथ ऐक्य।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २४१

(चार स्तम्भों के अर्थ)

उत्तर महाकाली **पूरब महालक्ष्मी**
दक्षिण महेश्वरी **पश्चिम महासरस्वती**

*

(भूमिगत बारह कक्षों के नाम जो मातृमन्दिर की नींव में बनेंगे)
'सच्चाई', 'नम्रता', 'कृतज्ञता', 'अध्यवसाय', 'अभीप्सा', 'ग्रहणशीलता', 'प्रगति', 'साहस', 'भद्रता', 'उदारता', 'समता', 'शान्ति'।

जुलाई १९७२

*

(मातृमन्दिर के चारों ओर के बारह बग़ीचों के नाम)
'सत्', 'चित्', 'आनन्द', 'प्रकाश', 'जीवन', 'शक्ति', 'वैभव', 'उपयोगिता', 'प्रगति', 'यौवन', 'सामञ्जस्य', 'पूर्णता'।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २४४

नगर-केन्द्र

'क' का विचार है कि बीच में एक द्वीप हो जिसके चारों तरफ़ पानी रहे, बहता पानी, जो पूरे नगर को पानी देगा; और पूरे नगर में से गुज़रने के बाद उसे पम्प-हाउस में भेज दिया जाये, और वहाँ से वह आसपास के सभी उर्वर खेतों में सिंचाई के लिए भेजा जाये। तो यह 'केन्द्र' एक छोटा द्वीप-सा हुआ जिसके ऊपर वह होगा जिसे हमने पहले "मातृमन्दिर" कहा —जिसे मैं हमेशा एक विशाल कमरे के रूप में देखती हूँ, एकदम ख़ाली, जो ऊपर से आते हुए प्रकाश को ग्रहण करेगा, इस तरह से व्यवस्था की जायेगी कि ऊपर से आने वाला प्रकाश एक ही स्थान पर केन्द्रित हो जहाँ... वह हो जिसे हम नगर के केन्द्र के रूप में स्थापित करना चाहें। पहले, हमने श्रीअरविन्द के प्रतीक के बारे में सोचा था, लेकिन हम जो कुछ रखना चाहें रख सकते हैं। यूँ हर समय प्रकाश की किरण उस पर पड़े जो... सूर्य के साथ घूमती रहे, घूमती रहे, घूमती रहे, तुम समझ रहे हो न? अगर इसे अच्छी तरह किया जाये, तो बहुत अच्छा होगा। और फिर नीचे, ताकि लोग बैठ कर ध्यान कर सकें, या केवल आराम कर सकें, **कुछ नहीं**, कुछ नहीं, केवल नीचे कुछ आरामदेह चीज़ रखी जायेगी ताकि वे बिना थके बैठ सकें, शायद कुछ खम्भों के साथ जो टेक लगाने का काम भी देंगे। कुछ-कुछ ऐसा ही। और इसे ही मैं हमेशा देखती हूँ। कमरा ऊँचा होना चाहिये, ताकि सूरज, दिन के समय के अनुसार, किरण के रूप में प्रवेश कर सके और उस केन्द्र पर पड़े जो वहाँ होगा। अगर इतना हो जाये, तो बहुत अच्छा होगा।...

सूरज की किरण का यह विचार... जब मैं दृष्टि डालती हूँ तो तुरन्त यही देखती हूँ। सूरज की किरण जो हर समय आ सके—ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि वह सारे समय आ सके *(सूरज की गति का अनुसरण करने का संकेत)*। और फिर, वहाँ कुछ होगा, एक प्रतीक, जो सीधा खड़ा होगा ताकि उसे चारों तरफ़ से देखा जा सके, और साथ-ही-साथ प्रकाश को पूरी तरह से लेने के लिए यह सपाट भी होगा। क्या?... भगवान् के लिए, इसे कोई धर्म न बनाओ!

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३०१-०३

आन्तरिक भाग

मैंने स्पष्ट रूप से देखा—बहुत, बहुत स्पष्टता से... यानी वह ऐसा था और वह अभी तक ऐसा है, वह वहाँ है *(एक शाश्वत स्तर का संकेत)*... इस जगह का आन्तरिक भाग...

यह एक स्तम्भ के अन्दर के हिस्से के जैसा हॉल होगा। खिड़कियाँ न होंगी। वायु-सञ्चार कृत्रिम होगा, उन मशीनों के साथ *(वातानुकूलन के यन्त्र का संकेत)* और बस एक छत। और सूरज केन्द्र पर पड़ेगा। या जब सूरज नहीं दिखेगा—रात को या बदली के दिनों में—एक *स्पॉटलाइट* रहेगी।

और विचार यह है कि अभी से एक तरह का नमूना या *मॉडल* बनाया जाये जिसमें क़रीब सौ लोग बैठ सकें। जब नगर बन जाये और हमें अनुभव हो जाये, तो हम उसे कोई बड़ा रूप दे सकते हैं। लेकिन फिर वह बहुत बड़ा होगा, जिसमें हज़ार से दो हज़ार तक आदमी समा सकें। और दूसरे को पहले के चारों तरफ़ ही बनाया जाये : यानी, दूसरा ख़तम होने से पहले, पहले को न हटाया जाये।

यही विचार है।...

यह बारह पहलुओं की मीनार होगी, हर पहलू साल के एक-एक महीने का प्रतिनिधि होगा; और ऊपर, मीनार की छत ऐसी होगी *(चारों ओर की दीवार से ऊपर उठती हुई छत का संकेत)*।

और फिर, अन्दर, बारह स्तम्भ होंगे। दीवारें और फिर बारह स्तम्भ और ठीक केन्द्र में, फ़र्श पर, मेरा प्रतीक होगा, और उसके ऊपर श्रीअरविन्द

के चार प्रतीक, जो मिल कर समचतुष्कोण बनायेंगे, और उसके ऊपर... एक ग्लोब होगा। सम्भव हो तो, प्रकाश के साथ या प्रकाश के बिना, पारदर्शक वस्तु का बना ग्लोब, लेकिन सूर्य के प्रकाश को उस ग्लोब पर पड़ना चाहिये; महीने और समय के अनुसार वह यहाँ से, वहाँ से, उधर से *(सूरज की गति का संकेत)* पड़ेगा। समझ रहे हो न? एक छिद्र होगा जिसमें से किरण आ सकेगी। कोई विकीर्ण प्रकाश नहीं : एक किरण जो सीधी पड़े, जिसे सीधा पड़ना चाहिये। इसे कर सकने के लिए कुछ तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होगी, इसीलिए मैं किसी इंजीनियर के साथ डिज़ाइन बनाना चाहती हूँ।

और फिर, अन्दर कोई खिड़की या रोशनी नहीं होगी। वह हमेशा, रात-दिन, अर्ध-आलोकित रहेगा—दिन में सूरज से, रात में कृत्रिम रोशनी द्वारा। और फ़र्श पर, कुछ नहीं, केवल इस तरह का फ़र्श होगा *(माताजी के कमरे जैसा)*। यानी, पहले लकड़ी (लकड़ी या कुछ और), फिर एक तरह का मोटा, बहुत मुलायम रबर फ़ोम, और फिर एक कालीन। कालीन सब जगह, केन्द्र को छोड़ कर सब जगह होगा। और लोग हर जगह बैठ सकेंगे। १२ स्तम्भ उन लोगों के लिए होंगे जिन्हें पीठ का सहारा लेने की ज़रूरत हो!

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३०४-०६

चमत्कार (ओरोवील का वायुमण्डल)

भव्य, निराला, अप्रत्याशित

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ)

वानस्पतिक नाम : Memecylon tinctorium

नीरवता और एकाग्रता का स्थान

वह बारह समान अन्तराल के पहलुओं की एक तरह की मीनार है जो साल के बारह महीनों का प्रतिनिधित्व करती है, और वह एकदम रिक्त है... उसमें सौ से लेकर दो सौ व्यक्तियों तक के बैठने का स्थान होगा। और फिर, छत को सहारा देने के लिए अन्दर बारह स्तम्भ होंगे (बाहर नहीं, अन्दर), और ठीक केन्द्र में, एकाग्रता की वस्तु...। सूरज के सहयोग से पूरे साल सूरज को किरणों के रूप में अन्दर आना चाहिये: विकीर्ण होकर नहीं, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि वह किरणों के रूप में अन्दर आ सके। फिर दिन के समय और साल के महीने के अनुसार किरण घूमेगी (ऊपर ऐसी व्यवस्था होगी) और किरण केन्द्र पर पहुँचेगी। केन्द्र में श्रीअरविन्द का प्रतीक होगा जो एक ग्लोब को सहारा देगा। ग्लोब हम किसी पारदर्शक वस्तु, जैसे बिल्लौर से बनाने की कोशिश करेंगे या...। एक बड़ा ग्लोब। और फिर, लोगों को एकाग्रता के लिए अन्दर आने की स्वीकृति होगी—*(माताजी हँसती हैं)* एकाग्र होना सीखने की! कोई नियमबद्ध ध्यान नहीं, वह सब कुछ न होगा, लेकिन वहाँ उन्हें मौन रहना होगा, नीरवता और एकाग्रता में रहना होगा।...

लेकिन स्थान एकदम... यथासम्भव सादा होगा। और फ़र्श ऐसा होगा कि आदमी आराम से बैठ सकें, ताकि उन्हें यह न सोचना पड़े कि यह उन्हें यहाँ चुभ रहा है या वहाँ चुभ रहा है!...

और बीच में, फ़र्श पर, मेरा प्रतीक होगा। मेरे प्रतीक के केन्द्र में चार भागों में, समचतुष्कोण की तरह, श्रीअरविन्द के चार प्रतीक होंगे, सीधे, जो एक पारदर्शक ग्लोब को सहारा देंगे। यूँ देखा गया है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३०९-१०

अपनी चेतना को पाने की कोशिश करने का स्थान

और फिर दरवाज़े नहीं हैं, लेकिन... बहुत नीचे जाने पर व्यक्ति फिर से मन्दिर के अन्दर आ जायेगा। व्यक्ति दीवार के नीचे जाकर फिर अन्दर निकल आयेगा। फिर से यह एक प्रतीक है। सब कुछ प्रतीकात्मक है।

और फिर वहाँ कोई फ़र्नीचर नहीं है, बल्कि फ़र्श पर, यहाँ की तरह, पहले, शायद, लकड़ी होगी, फिर लकड़ी के ऊपर एक मोटा "डनलप" होगा और उसके ऊपर, यहाँ की तरह, कालीन होगा। रंग का चुनाव अभी बाक़ी है। सारा स्थान सफ़ेद होगा। मुझे ठीक नहीं मालूम कि श्रीअरविन्द के प्रतीक भी सफ़ेद होंगे या नहीं... मेरे ख़याल से नहीं। मैंने उन्हें सफ़ेद नहीं देखा, मैंने उन्हें किसी ऐसे रंग में देखा जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता,—सुनहरे और नारंगी के बीच का कोई रंग, कुछ-कुछ इस तरह का। वे सीधे होंगे। उन्हें पत्थर में बनाया जायेगा। और एक पारदर्शक नहीं बल्कि पारभासक ग्लोब होगा। और फिर एकदम नीचे *(ग्लोब के नीचे का संकेत)* एक रोशनी होगी जो ऊपर जायेगी, विकीर्ण होकर ग्लोब को प्रकाशित करेगी। और फिर, बाहर से रोशनी की किरणें केन्द्र पर पड़ेंगी। इसके सिवाय और कोई रोशनी नहीं, कोई खिड़कियाँ नहीं, यान्त्रिक वायु-सञ्चार होगा। सज्जा का एक भी सामान नहीं, कुछ भी नहीं। एक ऐसा स्थान... अपनी चेतना को पाने की कोशिश करने का स्थान।

बाहर, कुछ ऐसा होगा *(माताजी दूसरा नक्शा खोलती हैं)*। हमें मालूम नहीं कि छत एकदम नुकीली होगी या... बहुत सादी, बहुत सादी होगी। उसमें क़रीब २०० आदमी समा सकेंगे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३१४-१५

चम्पकलाल के अन्तर्दर्शन

स्वर्णिम आकार (४.१.१९७९)

इस बार जो मातृमन्दिर मैंने देखा वह अद्‌भुत था, भव्य था, कल्पनातीत था। मैंने मातृमन्दिर के ऊपर, अन्तरिक्ष में, एक गगनचुम्बी, दीर्घ आकार देखा जो सारे ओरोवील को अपनी बाँहों में समेटे हुए था। उसका वर्णन बस इस तरह किया जा सकता है : निरपेक्ष रूप से सम्मोहक वह आकार अत्यधिक राजोचित, भव्य, अनन्त रूप से विशाल, आश्चर्यजनक, अत्यन्त देदीप्यमान, अनन्ततः उज्ज्वल, स्वर्णिम तथा कान्तिमय था।

उस आकार के शरीर के प्रत्येक भाग से एक-एक करके असंख्य हाथ उठे। धीरे-धीरे वह आकार ऊपर, ऊपर ही ऊपर उठने लगा और जैसे-जैसे वह उठा, उसके निम्न भाग से भी हाथ प्रकट होने लगे। कुछ समय बाद क्रमशः वह आकार नीचे उतरने लगा। उस समय उसकी सभी हथेलियाँ खुली हुई और अन्तरिक्ष में फैली हुई थीं। उन हथेलियों की प्रत्येक दिशा से एक स्वच्छ-पारदर्शक द्रव्य निकल कर चारों तरफ़ फैल रहा था। वह बहुत ही उज्ज्वल, जगमगाता हुआ तरल पदार्थ था, उसने सारे मातृमन्दिर को ढँक लिया, और फिर, स्वयं मातृमन्दिर से उस स्फटिकीय-पारदर्शक पदार्थ की धाराएँ बह निकलीं, सारा मातृमन्दिर एक विशाल झील में परिवर्तित हो गया, जिसमें वह द्रव्य लबालब भरा हुआ था।

वहाँ दूर, झील के चारों ओर, मुझे अनगिनत किशोर-किशोरियाँ खड़े दिखायी दे रहे थे जो इस स्फटिकीय जल को बड़े आनन्द से निहार रहे थे। और अन्त में वे एक-एक करके उस झील में उतरने लगे। कई उसमें ऊपर उतरा रहे थे, तो कई पानी के अन्दर थे, लेकिन वह द्रव्य इतना पारदर्शक था कि हर एक दिखलायी दे रहा था।

फिर असंख्य हाथोंवाला वह आकार झील में से बाहर निकला, लेकिन इस बार हाथों की बजाय उसका शरीर नेत्रों से भरा हुआ था। उसके बाद, स्वर्णिम प्रकाश का रूप लेकर वह आकार ऊपर उठने लगा, बीच रास्ते में वह एकदम स्थिर हो गया। तब, सूरज की किरणों की तरह, उस आकार की सभी दिशाओं से निकलता हुआ वह स्वर्णिम प्रकाश चारों तरफ़ छा गया।

और लो! अब कोई झील न थी! उसके स्थान पर एक विशाल-सुन्दर

बग़ीचा था। विभिन्न स्थानों पर इमारतें खड़ी थीं जो उस स्वर्णिम प्रकाश से जगमगा रही थीं। सारा वातावरण विभिन्न पुष्पों की विभिन्न सुगन्धियों से महक रहा था। इसके साथ ही, कई घण्टियों के नाद के संग, बहुत मधुर संगीत सुनायी दे रहा था।

Visions of Champaklal: पृ. ८८-८९

ओरोवील की नींव की स्थापना के समारोह का अन्तर्दर्शन (२१.२.१९७९)

मैंने श्रीमाँ को उनकी परम-मधुर मुस्कान के साथ देखा, उनका समस्त प्रेम उसमें उमड़ रहा था। सारा हॉल चरम 'प्रेम' से भरा हुआ था। दोनों हाथों से उन्होंने कुछ पलों तक मेरा सिर सहलाया, और मेरे ललाट पर एक हलके चुम्बन के द्वारा अपनी मोहर लगा दी। उस हॉल में मुझे देदीप्यमान स्वर्णिम प्रकाश के सिवाय और कुछ न दीखा। मैंने अनुभव किया कि माँ ने अपनी दोनों हथेलियों से मेरी आँखें ढँक लीं, ठीक उसी तरह जैसे वे तब किया करती थीं जब सशरीर थीं।

मैंने २८ फ़रवरी १९६८ की ओरोवील की नींव की स्थापना का समारोह ठीक वैसा ही देखा जैसा मैंने तब सुना था जब श्रीमाँ को उस समय के समारोह का पूरा वर्णन सुनाया जा रहा था। लेकिन अब मैंने वह सब आन्तरिक प्रतीक के साथ देखा। इस समारोह में भाग लेने वाले प्रत्येक युवा के सिर के ऊपर मैंने श्रीमाँ को उनकी आनन्दप्रद, मधुर, परम मुस्कान के साथ झुके हुए देखा। वे देदीप्यमान स्वर्णिम प्रकाश तथा अपना 'भागवत प्रेम' सर्वत्र फैला रही थीं। इससे मुझे कृष्ण की रास-लीला याद आ गयी। उसमें भाग लेने वाला प्रत्येक युवा सिंह पर सवार था, एक हाथ में वह अपने देश का झण्डा पकड़े हुए था और दूसरे में अपने देश की मिट्टी का कलश, और वह नींव के घट की ओर बढ़ रहा था। सारा दृश्य भव्य था। सिंह बहुत सुन्दर थे और अपने चमकते हुए सुनहरे रंग में राजोचित दीख रहे थे। उनके दीर्घ अयाल धरती को प्रायः छू रहे थे। सारा वातावरण किसी अदृश्य तत्त्व से व्याप्त था। २८ फ़रवरी १९६८ का यह दिवस संसार के इतिहास में अनूठा स्थान रखता है—जैसी कि संस्कृत की उक्ति है—*न भूतो, न भविष्यति*—न कभी ऐसा घटित हुआ, न ही कभी घटित होगा!

Visions of Champaklal: पृ. ९२

अतिमानसिक विज्ञान में ही आन्तरिक आराधना की सिद्धि, परिपूर्ण उच्चता तथा सर्वसमालिंगी विस्तीर्णता है, गभीर और पूर्ण मिलन है, परम ज्ञान के बल और हर्ष को वहन करने वाले प्रेम के प्रज्वलित पंख हैं। कारण, जो शून्य निष्क्रिय शान्ति तथा जो निस्तब्धता मुक्त मन का स्वर्ग है उसे अतिक्रान्त करने वाले सक्रिय हर्षावेश को अतिमानसिक प्रेम ही जन्म देता है; साथ ही यह अतिमानसिक निश्चल-नीरवता की प्रारम्भिक गभीरतर-महत्तर प्रशान्ति का परित्याग भी नहीं करता। प्रेम की एकता—जो भेदों की वर्तमान सीमाओं तथा प्रत्यक्ष विषमताओं के द्वारा न्यून या नष्ट हुए बिना इन सबको अपने में सम्मिलित कर सकती है—अतिमानसिक स्तर पर अपनी सम्पूर्ण सम्भाव्य शक्ति के शिखर पर पहुँच जाती है। वहाँ प्राणिमात्र के बीच प्रगाढ़ एकत्व—जो भगवान् और आत्मा के गभीर एकत्व पर प्रतिष्ठित होता है—सम्बन्धों की क्रीड़ा से संगति स्थापित कर सकता है और यह क्रीड़ा ही एकत्व को अधिक पूर्ण एवं निरपेक्ष बनाती है। अतिमानसिकभावापन्न प्रेम की शक्ति जीवन के सभी सम्बन्धों को बिना संकोच या भय के स्वायत्त कर सकती है और उन्हें अपरिष्कृत, मिश्रित तथा क्षुद्र मानवीय तरीक़ों से मुक्त करके तथा दिव्य जीवन की सुखमय साधन-सामग्री के रूप में उदात्त करके, ईश्वर की ओर मोड़ सकती है।

CWSA २३, पृ. १६८-६९ —श्रीअरविन्द

अतिमानसिक प्रेम की सुन्दरता (ओरोवील का पुष्प)

यह अपनी पराकाष्ठा पर रहने के लिए हमें निमन्त्रण देती है।

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ)

वानस्पतिक नाम : Hibiscus rosa-sinensis

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

फ़रवरी

१. कामना करना असमर्थ होना है, अपनी सीमाओं को स्वीकार करना और उन्हें जीतने में अपनी अक्षमता मान लेना है।

२. अपने अन्दर प्रगति के लिए एक अचञ्चल और स्थिर संकल्प को बसने दो। माताजी तुम्हारे अन्दर जो कुछ रखती हैं उसे चुपचाप, स्थिर और पूर्ण रूप से आत्मसात् करने की आदत सीखो। आगे बढ़ने के लिए यह सही तरीक़ा है।

३. माताजी पर उचित एकाग्रता के साथ उनके लिए किया गया काम ध्यान और आन्तरिक अनुभूतियों के बराबर ही साधना है।

४. सब कुछ अन्दर से शान्ति के साथ करना चाहिये—काम करना, बोलना, पढ़ना, लिखना सच्ची चेतना के अंश के रूप में करना चाहिये—सामान्य चेतना के बिखरे हुए और अशान्त क्रिया-कलाप या गतिविधि के साथ नहीं।

५. स्थिरता में ही तुम अपनी सत्ता को उच्चतम अभीप्सा के चारों तरफ़ एकत्र कर सकते हो।

६. चैत्य हमेशा भली-भाँति सन्तुलित रहता है। इसलिए जब वह सक्रिय हो और सत्ता पर शासन करता हो तो वह अनिवार्य रूप से सन्तुलन ले आता है।

७. मन के स्वच्छ होने के लिए उसे कम-से-कम एक हद तक नीरव रहना चाहिये, और प्राण के स्वच्छ होने के लिए उसे कामनाएँ त्याग देनी चाहियें, उसमें कामनाएँ, आवेश या आवेग न होने चाहियें।

८. तुम्हें अपनी अभीप्सा में इतना सच्चा होना चाहिये कि तुम्हें पता भी न चले कि तुम अभीप्सा कर रहे हो, तुम स्वयं अभीप्सा बन जाओ।

९. वास्तव में, अगर तुम्हारे अन्दर दोष न हों, तो तुम्हें दूसरों के अन्दर उनके होने का भान ही नहीं हो सकता। चूँकि इस सबका बीज तुम्हारे अन्दर है इसलिए तुम्हारा उनके साथ सम्पर्क होता है।

१०. चीज़ें जितनी अधिक कठिन हों, तुम्हें उतना ही ज़्यादा स्थिर-शान्त

होना चाहिये और तुम्हारे अन्दर उतनी ही अधिक अटल श्रद्धा होनी चाहिये। यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

११. जो उदात्त हृदयवाले हैं, जो अपना सिर उस समय ऊँचा रख सकते हैं जब चीज़ें ख़तरनाक हो रही हों, वे प्रसन्न हो सकते हैं। यह स्वयं अपने-आपसे ऊपर उठने का अवसर है।

१२. युवा होने का अर्थ है तुम जो कुछ हो उसे छोड़ने के लिए सदा तैयार रहना ताकि तुम वह बन सको जो तुम्हें होना चाहिये।

१३. ... सत्ता के हर भाग में भगवान् अपने-आपको अलग-अलग ढंग से प्रकट करते हैं। उच्चतर भागों में वे शक्ति, प्रेम आदि द्वारा अभिव्यक्त होते हैं, लेकिन भौतिक में वे सामञ्जस्य और सौन्दर्य के रूप में प्रकट होते हैं।

१४. हम बच्चे को जो उपहार दे सकते हैं उनमें सबसे अधिक मूल्यवान् है सीखने से प्रेम, हमेशा, हर जगह सीखने से प्रेम ताकि सभी परिस्थितियाँ, जीवन की सभी घटनाएँ हमेशा सीखने और अधिक सीखने के लिए नये-नये अवसर बनें।

१५. आश्रम के जीवन का लक्ष्य है, आध्यात्मिक चेतना पर आधारित जीने के एक नये मार्ग को तैयार करना—यह जीवन की एक नयी नींव को रखने की तैयारी है जिसमें समस्त कर्मों को स्वयं अपने लिए नहीं बल्कि भगवान् के लिए करना चाहिये।

१६. जो सच्चाई के साथ 'सत्य' की सेवा करना चाहता है वह 'सत्य' को जान जायेगा।

१७. मन एक साफ़ दर्पण है। हमें उसे शुद्ध रखना चाहिये ताकि उस पर धूल न जमने पाये।

१८. हमारा मन एक बाज़ार है जहाँ हर प्रकार के विरोधी विचार आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं। सच्चे और ईमानदार बनो तो तुम्हारा मन चैन से रहेगा।

१९. अपने मन को बहुत ज़्यादा सक्रिय होकर हो-हल्ले और विक्षोभ में न रहने दो, चीज़ों के ऊपरी आभास से ही परिणामों तक न जा पहुँचो। जल्दबाज़ी न करो, एकाग्र होकर स्थिरता में ही निश्चय करो।

२०. हमेशा स्थिर और शान्त रहने के बारे में बहुत सावधान रहो और

सम्पूर्ण समचित्तता को अधिकाधिक पूर्णता के साथ अपनी सत्ता में प्रतिष्ठित होने दो।

२१. एकदम मौन होने की अपेक्षा तुम जो कहते हो उस पर संयम ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। सबसे अच्छा है जो उपयोगी हो उसे यथार्थ और यथासम्भव सच्चे ढंग से कहना सीखना।

अगर तुम कोई सच्ची बात नहीं कहना चाहते तो झूठ बोलने की जगह चुप रहो।

२२. सत्य के पथ पर, अधिक जानने के लिए तुमने जो कुछ सीखा है उसे अभ्यास में लाना होगा। ज़रा-सा निष्कपट अभ्यास बहुत-से लिखे और बोले गये शब्दों से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

२३. सच्चे, सद्हृदय बनो तो तुम्हें सहायता प्राप्त होगी।

२४. श्रीअरविन्द कहते हैं कि कर्म का सच्चा मनोभाव तब आता है "जब कर्म सर्वदा श्रीमाँ के विचार के साथ जुड़ा होता है, उनकी पूजा के रूप में किया जाता है, इस प्रार्थना के साथ किया जाता है कि वह उन्हीं के द्वारा किया जाये।"

२५. तुम्हारी सत्ता में पर्याप्त रूप में एक अभीप्सा और एक लगन हो ताकि सत्ता का प्रसारण, चेतना का प्रसारण सम्भव हो सके।

२६. मनुष्य को पहले की अपेक्षा थोड़ा अधिक करने का थोड़ा-सा प्रयास **सर्वदा** करते रहना चाहिये। तब मनुष्य ऊपर की ओर जाने के पथ पर होता है। यदि कोई बहुत अधिक करने से डरता है तो उसका फिर से नीचे गिर आना और अपना क्षमताओं को खो देना सुनिश्चित है।

२७. सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि भागवत कृपा को अपने अन्दर कार्य करने दिया जाये, इसका कभी प्रतिरोध न किया जाये, इसके प्रति कभी कृतघ्न न हुआ जाये, कभी इससे मुँह न मोड़ा जाये—बल्कि हमेशा ही लक्ष्य प्राप्त होने तक प्रकाश, शान्ति, एकता और आनन्द का अनुसरण किया जाये।

२८. अगर तुम सचमुच कुछ भला करना चाहते हो तो सबसे अच्छी चीज़ जो तुम कर सकते हो वह यह है कि एक के बाद एक, पूरी सच्चाई के साथ अपने अन्दर विजय प्राप्त करो। इस तरह तुम संसार के लिए अपनी क्षमता के अनुसार अधिक-से-अधिक कर सकोगे।

'नयी कोंपलें' :

ज़िन्दगी का मोड़

मैं बचपन से कहता आया कि मुझे चित्रकार बनना है। मुझे इस दुनिया को अपने हाथों से सजाना है। मेरी नज़र अक्सर उन घने, हरे-भरे वृक्षों पर पड़ती जो मुझे मेरी खिड़की के बाहर दिखायी देते थे। और मैं अपने काग़ज़ के पन्नों को उनकी पत्तियों की ख़ूबसूरत छाप से वञ्चित न रखता था।

कभी-कभार सुबह की मन्द व ताज़ी हवा में पक्षियों का चहचहाना मुझमें रंगों की बौछार कर देता। मुझे याद है जब बारिश में मेरे नन्हें पाँव पानी में डूब जाते थे तो मेरी आँखें उसका चित्र अपने में समो लेती थीं। जब मेरे दोस्त एक-दूसरे के साथ हँसते-खेलते तो मैं उनसे दूर बैठ कर उनकी चित्रकारी करके अपनी कॉपी में एक यादगार पल के तौर पर छोड़ देता।

आज उसी किताब को देख कर मुस्कुरा रहा हूँ। उन पलों की यादों को आज महसूस कर रहा हूँ। ज़िन्दगी ने अनेक मोड़ ले लिये, मैं आगे बढ़ता रहा पर जब आज पीछे मुड़ कर देख रहा हूँ तो एक तरह का सुकून और अन्दर ही अन्दर रौनक महसूस हो रही है। मैं चित्रकार तो नहीं बना पर चित्रकारी से रचा-पचा है मेरा व्यक्तित्व। आज मैं जीवन में रंगों का रस लेना बच्चों को सिखाता हूँ जो कभी-कभी मुझे ही सिखला जाते हैं और मैं अध्यापक के तौर पर उन्हें पढ़ाता हूँ—मनोविज्ञान—मन के रंगों का ज्ञान!

—शक्ति शर्मा

चाँदनी चढ़ाता हूँ उन चरणों पर,
जो अपनी राहें आप बनाते हैं।
आवाज़ लगाता हूँ उन गीतों को,
जिनको मधुबन में भौंरे गाते हैं।

'निरामय जीवन' से साभार

—शिवप्रसाद अरोड़ा

भाव कहीं और जाता ही नहीं...

कहते हैं कि एक बार द्वारकानाथ श्रीकृष्ण ने भक्ति का शुद्ध रूप दर्शाने के लिए गरुडदेव को तिब्बत प्रदेश में यह कह कर भेजा कि गरुडदेव, आजकल हनुमानजी तिब्बत में राम-नाम में लीन हैं, कृपया जाकर उन्हें यह कह कर सादर यहाँ लिवा लाइये कि द्वारकाधीश श्रीकृष्ण आपके दर्शन को उत्सुक हैं। गरुडदेव को आश्चर्य ज़रूर हुआ लेकिन प्रभु की आज्ञा सिर आँखों पर। आदेश पाकर उन्होंने तुरन्त अपने पर तोलने शुरू कर दिये। विद्युत् से भी तीव्र गति से उड़ने वाले गरुड को तिब्बत देश पहुँचने में भला कितना समय लगता? पलक झपकते न झपकते वे हनुमानजी के सामने उपस्थित थे। पवनपुत्र उस समय गन्धर्वों तथा किन्नरों के साथ रामायणपाठ में लौलीन थे। कुछ पल गरुड ने प्रतीक्षा की कि शायद मेरी उपस्थिति का भान पवनपुत्र को हो जाये, उन्होंने अपने विशाल डैन फहराये, इधर से उधर उड़ानें भरीं, लेकिन कोई लाभ न हुआ। अन्त में हनुमानजी के पास जाकर, उनका सादर अभिवन्दन कर, गरुडजी धीमे स्वर में बोले—"हे नाथ! द्वारकाधीश ने आपका स्मरण किया है।"

श्रीरामभक्त हनुमान के अधरों पर तो बस रामनाम था, न वे गरुडदेव को देख पाये न उनकी वाणी ही सुन पाये। बार-बार अभ्यर्थना, प्रार्थना और विनय करने के पश्चात् भी जब आञ्जनेय टस से मस न हुए, अपने भजन-कीर्तन में पूर्ववत् तल्लीन रहे तो गरुडदेव की सहनशक्ति सीमा पार कर गयी। धीरे-धीरे क्रोध उन पर हावी होने लगा और अन्त में उन्होंने चोंच से हनुमानजी की पूँछ खींच-खींच कर कहा—"आञ्जनेय! आपको द्वारकाधीश बुला रहे हैं...।"

प्रभु की पूजा-अर्चना में कौन विघ्न डाल रहा है यह सोच कर, इधर-उधर देखे बिना, क्रुद्ध हनुमानजी ने अपनी पूँछ में गरुडजी को लपेट कर इतनी दूर फेंक दिया कि वे तो सीधे द्वारका में श्रीकृष्ण के चरण-कमलों में घोर गर्जना के साथ जा गिरे! भयंकर शब्द सुन कर सभी पुरवासी महल की ओर दौड़े। मूर्च्छित गरुडजी को देख सभी सकते में आ गये। श्रीकृष्ण तुरन्त उनके उपचार में लग गये, शीघ्र ही उनकी मूर्च्छा टूट गयी, कुछ स्वस्थ हो जब उन्होंने आद्योपान्त सारा वृतान्त विस्तार से सुनाया तो द्वारकाधीश ने उनके

डैन प्रेम से सहलाये। भयभीत गरुड बोल उठे—"प्रभो, कृपया ऐसे स्थान पर मुझे अब कभी मत भेजियेगा। यह तो आपके वरद हस्त और आशीर्वाद—जो हमेशा मुझे घेरे रहते हैं—ने ही मेरी जान बचायी और आपके चरणों की शरण दिलायी, नहीं तो आज मेरी अकाल मृत्यु निश्चित बदी थी।"

भय से कातर गरुडदेव को अपनी बाँहों में भर द्वारकाधीश मुस्कुराते हुए बोल उठे—"हे वैनतेय, भय को अपने हृदय से निकाल दूर करो, मैं तुम्हारा क्षमा-प्रार्थी हूँ, मेरे कारण तुम्हें इतना कष्ट सहन करना पड़ा। रामनाम के सिवाय श्रीहनुमान के कानों में और कोई शब्द प्रवेश ही नहीं करता। वत्स! इस बार जाकर उनसे प्रार्थना करना कि अयोध्यापति श्रीजानकीनाथ ने आपका स्मरण किया है। जानकीपति का नाम सुन कर ही वे दौड़े-दौड़े चले आयेंगे... जाओ वत्स, झटपट जाकर उन्हें बुला लाओ, तुम तो यूँ गये और यूँ आये।"

लेकिन श्रीकृष्ण के वचन गरुडदेव को दिलासा न दे रहे थे। भयभीत वे सादर प्रणाम कर बोल उठे—"भगवन्! अब तो हनुमानजी के नाम के उच्चारण मात्र से मेरे रोम-रोम में भय की लहरें उठ रही हैं। अब तो सपने में भी उनके पास जाने का साहस मेरे अन्दर नहीं बचा!"

प्रभु मुस्कुराये फिर बोल उठे—"भयभीत न होओ वत्स, मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि 'जानकीनाथ श्रीराम आपको बुला रहे हैं' यह वाक्य सुनते ही श्रीहनुमान जैसे होंगे वैसे ही उठ कर पवनवेग से तुम्हारे साथ हो लेंगे, यह निर्विवाद सत्य है। अतः निश्चिन्त होकर उन्हें बुला लाओ कृपया!" कह कर श्रीकृष्ण ने गरुडजी के सामने हाथ जोड़ दिये।

वैनतेय उनके चरणों में गिर कर बोल उठे—"प्रभो! आप मुझे लज्जित न करें। मैं अभी गया और अभी आया।"

आधे क्षण में गरुडजी फिर से पहुँच गये हनुमानजी के सम्मुख। कुछ दूर से ही हाथ जोड़ कर उन्होंने द्वारकाधीश का सन्देश सुना दिया।

श्रीजानकीनाथ का नाम उच्चारित हुआ नहीं कि हनुमानजी का सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा, आँखों से जल की धारा फूट निकली और सुसम्वाद सुनाने वाले मित्र गरुड को अंक में भर, उनकी बतायी दिशा की ओर पवनगति से उड़ चले।

इस बीच श्रीकृष्ण ने सत्यभामा के पास जाकर उनसे सीताजी का रूप

धारण करने को कहा। सत्यभामा हँस कर बोल उठीं—"भगवन्! आप ही बहुरूपिया हैं, मैं नहीं। मैं तो आपके बहुरूपियेपन का आनन्द उठाऊँगी।" अतः वे रुक्मिणी जी के महल में गये। उन्होंने तुरन्त आज्ञा शिरोधार्य की और श्रीराम बने श्रीकृष्ण के वामांग में जानकीवेश में विराजमान हो गयीं...

श्रीरामजानकी की मनोहारिणी युगल मूर्ति के सम्मुख आञ्जनेय तन-मन की सुध-बुध भूल कर करबद्ध गा उठे—

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः।।

और वैनतेय प्रभु की लीला पर करबद्ध किंकर्तव्यविमूढ़ खड़े के खड़े रह गये!!

हनुमानजी को अपने चरणों से उठा, अंक में भरते हुए प्रभु बोल उठे —"वत्स, 'द्वारकाधीश बुला रहे हैं' गरुडजी द्वारा कई बार उच्चारित यह वाक्य आपके कानों में नहीं पड़ा, लेकिन जानकीनाथ के नाम के उच्चारण मात्र से आप ऐसे वेग से द्वारका पधारे कि हम सबको सचमुच आश्चर्य में डाल दिया आपने। क्या आप दोनों रूपों में भेद करते हैं?"

"नहीं नाथ! कदापि नहीं। आप और जानकीनाथ में भेद कैसा? दोनों ही परमात्मा हैं, लेकिन फिर भी कमललोचन राम ही मेरे सर्वस्व हैं—

श्रीनाथे जानकीनाथे ह्यभेदः परमात्मनि।
तथापि मम सर्वस्वं रामः कमललोचनः।।

सचमुच भगवन्! राजीवलोचन जानकीनाथ ने मुझे इस तरह अभिभूत कर लिया है कि मेरा भाव कहीं और जाता ही नहीं!"

'पुरोधा', जून २००२ से —वन्दना

ओरोवील वैश्व शान्ति, मैत्री, भ्रातृभाव और एकता के लिए प्रयास है।
—श्रीमाँ

Space on this page is offered by:

DEORAH SEVA NIDHI

Charitable Trust Dedicated to Service
(Founder trustee: Late Shri S. L. Deorah)
25, Ballygunge Park, Kolkata - 700 019

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

— श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन– 0565–3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Date of Publication: 1st February 2018
Rs. 15.00 (Monthly)
Registered: PY/47/2018-20
RNI No.18135/70

A school by The Vatika Group vatika

Nature Friendly

"My child is in Grade 2. My son's journey with this school started 3 years back.

What really drew me to the school at the first instance is the calmness that prevails in the atmosphere!

Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy – class rooms in MatriKiran are the most nature friendly, spacious, well ventilated, they open out to green spaces... perfect to stay in communion with nature."

Dr. Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 2

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2017-18

ICSE Curriculum

MatriKiran
www.matrikiran.in

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 9

Junior School
W Block, Sec 49, Sohna Rd, Gugaon
+91 124 4938200, +91 9650690222

Senior School
Sec 83, Vatika India Next, Gugaon
+91 124 4681600, +91 9821786363